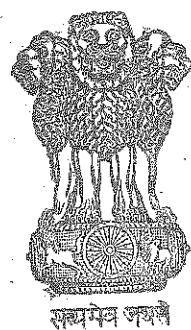


152



भारत का विधि आयोग

अभिरक्षान्तर्गत अपराध

संबंधी

एक सौ बाबनवीं रिपोर्ट

1994

५० एन० सिव
(भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति)



अध्यक्ष
विधि आयोग
भारत सरकार
शासकी भवन
नई दिल्ली-110 001
टेलीफोन का०: 384475
नि०: 3019435
अगस्त 26, 1994

ब० शा० पत्र सं०: ६(३)(१६)/९२-एल सी (एल एस)

प्रिय ब्रह्मान मंत्री जी,

“अभिरक्षान्तर्गत अपराध संबंधी १५२वीं रिपोर्ट (१३वें विधि आयोग की ९वीं रिपोर्ट) इसके साथ अग्रेषित करते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष है।

पुलिस और अन्य विधि प्रवर्तनकारी अभिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग और संदिग्ध व्यक्तियों को यातना के परिवार हमारे समाज के लिए चिन्ता का विषय रहे हैं। अभिरक्षान्तर्गत अपराध और पुलिस अभिरक्षा में व्यक्तियों को यातना देना जघन्य तथा विभूत्स कार्य हैं क्योंकि वे अरक्षित नागरिक के विश्व लोक प्राधिकारी द्वारा अभिरक्षान्तर्गत न्यास का विश्वासवात व्यक्त करते हैं, ऐसे व्यवहार, मूल अधिकारों और मानव अधिकारों का अतिलंबन है। इस द्वासदी के नियंत्रण की अविलंब आवश्यकता है। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, यातना, क्षति और मृत्यु के शिकार व्यक्तियों में से अधिकांश व्यक्ति हमारे समाज के कमज़ोर वर्ग के हैं, अतः विधि आयोग ने, स्वप्रेरणा से इस विषय को गहन अध्ययन के लिए हाथ में लेना आवश्यक समझा चाहा।

आयोग ने इस विषय पर जनमत प्राप्त करने के लिए एक कार्यपत्र परिचालित किया था। एक सेमिनार का भी आयोजन किया गया था जिसमें अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की समस्या पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई थी। आयोग ने संवैधानिक और विधिक उपबंधों का गहन विश्लेषण करने के पश्चात् यह रिपोर्ट तैयार की है जिसमें मौलिक और प्रक्रियात्मक विधि के, जिनके अंतर्गत भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के कुछ उपबंधों के संशोधन भी हैं, संशोधन के लिए सिफारिश की है। सिफारिशें, शक्ति के दुरुपयोग की संभावना को अंतिष्ठि करने और शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर के संदाय का उपबंध करने की दृष्टि में रख कर की गई हैं।

हमें आशा है कि इस रिपोर्ट में आयोग द्वारा की गई सिफारिशें कार्यान्वित की जाएंगी क्योंकि वे अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के निधन और अज्ञानी शिकार व्यक्तियों के लिए अत्यधिक लाभप्रद होंगी और यह हमारे नागरिकों के मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक प्रगतीमंड कदम होगा।

सावर,

अद्यक्ष
ह०-
(५० एन० सिव)

माननीय श्री पी० वी० नरसिंहराव,
प्रधान मंत्री एवं
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य संचाली,
नई दिल्ली।

विषय सूची

	पृष्ठ सं०
अध्याय 1 भूमिका	1
अध्याय 2 अभिरक्षा में अपराध की निर्दर्शक परिस्थितियाँ	4
अध्याय 3 संबैधानिक और कानूनी उपबंध	8
अध्याय 4 अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाएं	19
अध्याय 5 गिरफ्तारी	23
अध्याय 6 पुलिस धाने पर बुलाया जीना	34
अध्याय 7 चिकित्सीय परीक्षा	36
अध्याय 8 प्रश्नम इतिला रिपोर्ट	39
अध्याय 9 मृत्यु की दशा में जांच और मृत्यु समीक्षा	42
अध्याय 10 अभियोजन के लिए मंजूरी	44
अध्याय 11 साक्ष्य विधि	47
अध्याय 12 प्रतिकर	51
अध्याय 13 पुलिस का संगठन	56
अध्याय 14 सिफारिशें	59
 परिशिष्ट :	
परिशिष्ट 1 अभिरक्षान्तर्गत अपराध संबंधी कार्य-पत्र	66
परिशिष्ट 2 कार्य-पत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणी	77

अध्याय 1

भूमिका

1. 1. हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने वाले अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बढ़ती हुई घटनाएं गंभीर चिन्ता का विषय है। सत्ता के दुरुपयोग, और किसी घटना के अन्वेषण के संबंध में पूछताछ के लिए पुलिस और अन्य विधि प्रवर्तनकारी अधिकारणों द्वारा संदिग्ध व्यक्तियों को यातना की शिकायतें बढ़ रही हैं। कुछ समय से ऐसी शिकायतें ने यातना, हमला, क्षति, उद्वापन, लैंगिक शोषण, और अभिरक्षा में मृत्यु की घटनाओं के बढ़ने के कारण खतरनाक बहु-आयामी रूप ले लिया है। अन्य अपराधों की तुलना में अभिरक्षान्तर्गत अपराध, विशेष रूप से जघन्य और वीभत्स हैं क्योंकि वे अरक्षित नागरिक के प्रति लोक सेवक द्वारा अभिरक्षान्तर्गत व्यवस्था के विश्वासघात को प्रतिविभिन्न करते हैं। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, विधि, मानव गरिमा और मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

1. 2. व्यष्टि की स्वतंत्रता और उसके जीवन की रक्षा संबंधी संवैधानिक और कानूनी उपबंधों के बावजूद, अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की बढ़ती हुई घटनाएं समाज में अच्यवस्था बढ़ाने वाला उपादान बन गई है। लाभग प्रतिदिन ही प्रातः समाचार-पत्रों में पुलिस की अभिरक्षा में अमानवीय यातना, हमला और मृत्यु की रक्त-रंजित कहानियां पढ़ने को मिलना बहुत ही दुःखद है। अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की चौंका देने वाली बढ़ती हुई संख्या ने समाज के प्रत्येक वर्ग की चेतना को झकझोर डाला है और इससे जनता में, विधि प्रवर्तन अभिकारणों विशेष रूप से पुलिस तथा राजस्व और आसूचना प्रवर्तन निदेशालय के प्रति कड़ा विरोध पैदा कर दिया है।

उच्चतम न्यायालय ने, एक से अधिक अवसर पर अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की पुनरावृत्ति पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। न्यायालय ने पुलिस के उस सहायक निरीक्षक की, जिसे एक पुलिस अधिकारी के गृह में हुई चोरी के अपराध की पूछताछ के संबंध में पुलिस अभिरक्षा में एक व्यक्ति को उसकी मृत्यु पर्यन्त यातना देने के लिए नीचे के न्यायालयों द्वारा आजीवन कारावास का ढांड दिया गया था, अपील खारिज करते समय अपनी व्याधी और बेदना इन शब्दों में व्यक्त की थी, “हम पुलिस यातना की उस पैशाचिक पुनरावृत्ति से, जिसका परिणाम सामाजिक नागरिकों के मन में यह भयावह आतंक है कि उनका जीवन और उनकी स्वतंत्रता एक ऐसे नए संकट के अधीन हो गए हैं जब कि विधि के मंरक्षक पुलिस हिरासत में, —— मानव अधिकारों को मृत्यु के मुंह में लोका जा रहा है, यदि समाचार-पत्रों की रिपोर्ट रंच मानव विश्वास योग्य हैं तो अत्यधिक विक्षुल्भ हैं क्योंकि वे कष्टप्रद प्रकोण बनते जा रहे हैं। यह बृद्धि, हमारे मानव अधिकार, जागरूकता और मानवीय संवैधानिक व्यवस्था के लिए अनर्थकारी है।”¹

1. 3. अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बाबत कोई विश्वसनीय या प्रामाणिक सांख्यिकी उपलब्ध नहीं है क्योंकि यातना की अधिकतर घटनाएं अभिलिखित नहीं हैं। नगरीय क्षेत्रों में यातना और क्षति की घटनाएं जन संचार, माध्यमों द्वारा जनता की जानकारी में लाई जाती हैं जब कि हमारे इस विशाल देश के ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली ऐसी घटनाओं की बहुत बड़ी संख्या की कोई जानकारी नहीं मिल पाती। गतिविधियों की ऐसी स्थिति में, अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाओं की सही संख्या बतला पाना कठिन है। वर्ष 1993 के लिए एम्सेस्टी इंटरनेशनल रिपोर्ट के अनुसार 1983 से 1993 तक की अवधि के दौरान संपूर्ण भारत में अभिरक्षा में 415 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 1990 से 1993 तक के दौरान सारे देश में पुलिस अभिरक्षा में 289 बलात्संग और 274 मृत्यु के मामलों की रिपोर्ट की गई थी²। एक प्रमुख समाचार-पत्र में प्रकाशित रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्ष 1990-1993 के दौरान अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु

1. रघुबोर तिह बनाम हरियाणा राज्य, (1980) 3 एस सी सी 17 ए आई बार 1980 एस सी 1087।

2. राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, ग.ह. मंदालय, भारत सरकार का तारीख 15-6-1994 का पत्र संख्या क 205/1/94-एस०टी०ए०टी०/एन०सी०आर०बी।

की 265 घटनाएँ¹ हुई थीं। इन संख्याओं के सही होने की कोई गारंटी नहीं है, किन्तु यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाएँ चौका देने वाले ऐसे अनुपात में बढ़ गई हैं जो हमारी दांडिक न्याय की प्रणाली की विश्वसनीयता को प्रभावित कर रही हैं और जो राज्य की अपक्रीति बढ़ा रही हैं।

1.4. अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की समस्या जन-पंचार तथा हमारे देश के विभिन्न मंचों और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी परिचर्चा की विषय-वस्तु बन गई है। राष्ट्रीय और साथ ही अंतरराष्ट्रीय अभिकरणों ने अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की रिपोर्टों के परिणामस्वरूप मानव अधिकारों के अतिक्रमण के लिए हमारी प्रणाली की ओर संकेत किया है। सितंबर, 1992 में केन्द्रीय सरकार ने मानव अधिकारों के अतिक्रमण पर विचार-विमर्श किया गया था। सम्मेलन में हुई परिचर्चा में लिए गए विनिश्चय उपलब्ध नहीं हैं यद्यपि सम्मेलन के पश्चात केन्द्रीय सरकार ने मानव अधिकारों के अतिक्रमण को निपटाने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया था।

1.5. आमतौर पर, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों, यातना, अति या मृत्यु के शिकार समाज के कमज़ोर वर्गों के लोग होते हैं। निर्धन, पददलित और अज्ञानी, रंचमाल या पूर्णतः राजनैतिक या आर्थिक शक्ति से हीन व्यक्ति अपने हितों के संरक्षण में असमर्थ हैं। समाज के समृद्ध सदस्य, सामान्यतः यातना के अव्यक्तीन नहीं होते हैं क्योंकि पुलिस उनके संसाधनों से भयभीत रहती है। ऐसे साधन सम्पन्न व्यक्ति तत्काल अपनी स्वतंत्रता पुनः पाने के लिए उच्चाधिकारियों तक और न्यायालयों में पहुंच जाते हैं। समाज के कमज़ोर या निर्धन वर्गों के सदस्य, अनौपचारिक रूप से परिष्कार किए जाते हैं और पुलिस अभिलेखों में ऐसी गिरफ्तारियों की प्रविष्टि किए जाना कई दिनों तक पुलिस अभिरक्षा में रखे जाते हैं। इस अनौपचारिक निरोध के दौरान उनको यातना दी जाती है, जिसका परिणाम कभी-कभी मृत्यु होता है। अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में मृतक का शरीर, गुप्त रूप से बिनाइ किया जाता है या उसे सार्वजनिक स्थान पर, आत्महत्या या दुर्घटना का मामला बनाते हुए फैक दिया जाता है। पुलिस कामिक को दबाने के लिए अभिलेखों में छलसाधन किया जाता है। शिकार व्यक्ति के नातेदार या मित्र, अपनी निर्धनता, अज्ञान और अशिक्षा के कारण विधि का संरक्षण पाने में असमर्थ होते हैं। किन्तु, भले ही कुछ स्वेच्छिक अभिकरण उनका मामला हाथ में लेते हों था त्रुटिकर्ता लोक अधिकारियों के विरुद्ध लोकहित मुकदमे संस्थित किए जाते हैं, उनके लिए कोई प्रभावी या त्वरित उपचार उपलब्ध नहीं है, परिणामस्वरूप त्रुटिकर्ता लोक अधिकारी, निरापद रह जाते हैं। यह स्थिति इस धारणा को जन्म देती है कि विधि का संरक्षण सम्पन्न वर्ग के लिए है, निर्धनों के लिए नहीं। यदि अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की घटनाएँ नियंत्रित या विलोपित नहीं की जाती हैं तो संविधान, विधि तथा राज्य का लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं रह जाएगा जिससे अंतोगत्वा समाज को अस्त-व्यस्त कर देने वाली अरजकता फैल जाएगी। संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस ब्रैडीज के अनुसार सरकार “एक शक्ति-सम्पन्न और सर्वध्यापी शिक्षक है (जो) सभी लोगों को अपना उदाहरण देकर शिक्षा प्रदान करती है।” यदि सरकार ही कानून तोड़ने वाली बन जाती है, तो वह विधि की अवमानना को जन्म देती है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने-आप में विधि बन जाने के लिए आमंत्रित करती है।² किसी भी सभ्य समाज में ऐसी स्थिति की विधिमान्यता को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

1.6. विधि और व्यवस्था बनाए रखना, किसी भी सरकार के लिए प्राथमिक महत्व की बात है। अपराध का अन्वेषण और अपराधी का पकड़ा जाना, शांति और व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए, अत्यन्त आवश्यक है। विधियों के कार्यनियन और विधि-व्यवस्था बनाए रखने के लिए, पुलिस और अन्य विधि प्रबन्धनकारी अभिकरण आवश्यक हैं, किन्तु कोई भी सभ्य देश, किसी अपराध की पूछताछ और उसके अन्वेषण के दौरान, यातना और उत्तीर्णन के प्रयोग की अनुज्ञा नहीं दे सकता है। पुलिस और अन्य सरकारी अभिकरणों से विधि को प्रबन्धित कराने में यह अपेक्षित है कि वे व्यक्ति के मूल अधिकारों के प्रति संवैधानिक प्रतिबद्धता का सम्मान करें। कानूनी विधियां, जिनके अन्तर्गत दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साह्य अधिनियम हैं, संदिग्ध या किसी अभियुक्त के हित की सुरक्षा के लिए प्रक्रिया का उपबंध करते हैं। किन्तु वास्तविक व्यवहार में उन उपबन्धों का अतिक्रमण किया जाता है। विद्यमान विधि, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में कार्रवाई करने के लिए अपर्याप्त और प्रभावहीन है और उनके मामलों में, त्रुटिकर्ता अधिकारी, परिवादकर्ता को उनके विरुद्ध मामला साबित कर पाने में असमर्थता के कारण, दंड पाने से बच जाते हैं। उच्चतम न्यायालय ने भारत में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर कार्रवाई करने से संबंधित अपर्याप्ति कानूनी उपबन्धों पर प्रतिकूलता दिखाई की है और न्यायालय ने विद्यमान विधियों में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिए हैं।

1. श्रीमी० सहा, “दुर्भास बेटर पुलिस-प्रिवेट” दि हिंदू, मई 17, 1994, पृ० 17।

1.7. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्ति साधारणतया समाज के कमज़ोर वर्गों के होते हैं, निर्धन कुटुंब के उपार्जनक सदस्य की अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में, मृतक के कुटुंब के सदस्यों को दिवाली की विदाना पड़ता है। सरकार द्वारा अभिरक्षान्तर्गत के कुटुंब के सदस्यों को दिवाली की विदाना पड़ता है। मृतक के सदस्यों को राहत मृत्यु की जांच करने के लिए नियम संस्थानीय विधि की संस्थानीय विधि की विधिकारिश की है। उच्चतम न्यायालय और उनके पुनर्वास का उपबंध करने के लिए विधि में संशोधन की विधिकारिश की है। अन्य न्यायालयों ने भी राज्य की, प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को तुकासानी का मंदाय करने के लिए अन्य न्यायालयों के लिए सुख्ख मंदी और गृह संभी भी है, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के निर्देश दिए हैं। राज्य कृत्यकारी, जिनमें सुख्ख मंदी और गृह संभी भी है, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के विधिकारिशों के प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को अनुप्रयुक्ति के संसाधन मंजूर करने रहते हैं, किन्तु विद्यमान विधिकारिशों के प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को प्रदिकर या तुकासानी की जांची भी के लिए परापूर्ति: उपबंध नहीं करती है। अतिरिक्त राहत मंजूर करने के लिए भी कोई उपबंध नहीं है। नियम द्वारा तुकासानी के लिए राहत का दावा, सिविल वाद के माध्यम से अपक्रिय विधि में विद्यमान सकता है कि विद्यमान संबंध में विधिक स्थिति अस्पष्ट है और सिविल वाद की प्रक्रिया अत्यन्त बोझिल है, जो इसे आपके बनाए देती है।

1.8. विधि आयोग को, उन विधियों की, जो निर्धनों पर प्रभाव डालती हैं, जांच करने का और ऐसे उपायों का, जो निर्धन की सेवा में विधि और विधिक प्रक्रिया को लागू करने के लिए आवश्यक हो, विधि प्रशासन प्रणाली को यह सुनिश्चित करने के लिए पुनरीक्षणालील रखते हुए, कि न्यायिक प्रशासन प्रणाली, राज्य की नीति के विवेक तत्वों के परियोजने में समाज की मांगों के प्रति संवेदनशील रहे, मुकाबले देने का कार्य सीपा गया था। यद्यपि सरकार से, अध्ययनाधीन विषय पर विधि आयोग को कोई निर्देश नहीं किया था। फिर भी आयोग ने गहन अध्ययन के लिए यह विषय, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्तियों को जो हमारे समाज के प्रायः कमज़ोर वर्गों के होते हैं, राहत प्रदान करने की दृष्टि से अपने हाथ में लिया है। अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की आवृत्ति को कम करने और विधियों तथा उनके आश्रितों की राहत का उपबंध करने के लिए मौलिक और प्रतिवादमूलक दोनों प्रकार की विधियों का संशोधन करने की जिता रही है, इसीलिए वह अध्ययन किया गया है। आयोग इस तथा से परिचित है जनता द्वारा मांग की जाती रही है, इसीलिए वह अध्ययन किया गया है। आयोग इस तथा से परिचित है कि विधि प्रवर्तक अभिकरणों द्वारा शक्ति का दुरुपयोग सकलतापूर्वक समूल रोका नहीं जा सकता, क्योंकि विधि प्रवर्तक अभिकरणों द्वारा शक्ति का दुरुपयोग सकलतापूर्वक समूल रोका नहीं जा सकता, क्योंकि विधि का पालन, विधि प्रवर्तक अभिकरणों की सामाजिक चेतना, मानव अधिकारों के प्रति तथा व्यक्ति के स्वातंत्र्य और उसकी स्वतंत्रता के प्रति उनकी जागरूकता पर निर्भर करता है। अभिरक्षा में यातना के अवसर समाप्त करने के लिए विधि की बनाई जानी चाहिए और तब भी यह इसे समूल समाप्त कर पाना अवश्यक है। अधिकार विधि के संभव न हो सके तो कम से कम अधिकतम संभव सीमा तक इसे न्यूनतया करने के लिए प्रयास किए जाने संभव हैं। आयोग ने, पूर्वोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर यह कार्य आरंभ किया है।

1.9. इस विषय पर लोकभक्त को प्रकाश में लाने के लिए, आयोग ने अध्ययनाधीन विषय के विभिन्न पहलुओं को व्योगित करते हुए, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर एक कार्य-व्यव परिचालित किया गया। कार्यपत्र में, विधि आयोग ने अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की सबस्या के विधियों पहलुओं पर दस सुन्दर तैयार किए थे। और मौलिक तथा प्रक्रियान्मक विधि के संशोधन की अन्तिम प्रस्थापनाओं पर अभियन्त आमंत्रित किए थे। कार्यपत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणी का अभिकरणों, अधिकरक्ताओं और अन्य व्यक्तियों को भी भेजा गया था। कार्यपत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणी को “दांडिक न्याय का प्रसारण, उसकी समस्याएँ और परिप्रेक्ष” सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। आयोग ने, “दांडिक न्याय का प्रसारण, उसकी समस्याएँ और परिप्रेक्ष” सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। आयोग ने, “दांडिक न्याय का प्रसारण, उसकी समस्याएँ और परिप्रेक्ष” सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। आयोग ने, “दांडिक न्याय का प्रसारण, उसकी समस्याएँ और परिप्रेक्ष” सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। आयोग ने, “दांडिक न्याय का प्रसारण, उसकी समस्याएँ और परिप्रेक्ष” सार परिशिष्ट 2 में दिया गया

अध्याय 2

अभिरक्षा व अपराध की नियन्त्रक परिस्थितियाँ

2. 1 गिरफ्तारी और उसका रूपरूप

किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी, अभिरक्षा की ओर ले जाती है, जो अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के विशद्व व्यक्ति के प्रति जब वह अभिरक्षा में है, किसी लोक सेवक द्वारा अपराध का किया जाना, अभिरक्षान्तर्गत अपराध होता है। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, अपराध के पूर्व गिरफ्तारी या निरोध होता है। साधारण रूप में “अभिरक्षा” किसी व्यक्ति के गिरफ्तार किए जाने से प्रारंभ होती है, गिरफ्तारी वैध या अवैध हो सकती है, यह औपचारिक या अनौपचारिक हो सकती है; यह शब्द द्वारा या कृत्य द्वारा हो सकती है।¹⁻⁶ गिरफ्तारी के कृत्य का कोई भी उद्देश या प्रवर्ग क्यों न हो, उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम होता है; यह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से बंचित कर देती है। उस क्षण से आगे, वह पूर्णतः उसको गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति के नियन्त्रण है। उसकी गतिविधि, उसका स्वातंत्र्य, उसके कृत्य, और उसका चित्तन भी, अन्य व्यक्ति के अन्य नियन्त्रण और स्वामित्व के अधीन आ जाता है। उसका व्यक्तित्व, उस व्यक्ति के अधीनस्थ हो जाता है जिसकी अभिरक्षा में वह रखा गया है। प्रत्येक गिरफ्तारी अभिरक्षा की कोटि में आती है। गिरफ्तारी और अभिरक्षा परिवारी में नहीं है। किसिपर विविध विविधियों में अभिरक्षा, गिरफ्तारी की कोटि में आ सकती है, किन्तु सभी परिस्थितियों में नहीं।⁷ गिरफ्तारी, किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने की औपचारिक पद्धति है, किन्तु कोई व्यक्ति, अन्य प्रकारों से भी अभिरक्षा में हो सकता है। सामान्यतः किसी व्यक्ति के निरोध के संबंध में “अभिरक्षा” शब्द से उसकी इच्छाशक्ति के अनुसार चलने दिक्षे के स्वातंत्र्य से इंकार कर सम्बद्ध व्यक्ति के चलने फिरने पर अवरोध विवक्षित है। इस प्रकार, गिरफ्तारी के पश्चात् कोई व्यक्ति औपचारिक या अनौपचारिक रूप से सम्बद्ध प्राधिकारी की अभिरक्षा में होता है।

2. 2 स्वामित्व की स्थिति और प्राधिकार का दुरुपयोग

स्वामित्व, अधिशासन और समग्र नियन्त्रण की यही स्थिति, दुरुपयोग की संभावना की जन्मदाती है, यदि राजनीतिक क्षेत्र में, “सत्ता अभिरक्षा बनाती है”, तो यह कहना समानरूपेण सही है कि प्राधिकारी की स्थिति प्राधिकार का दुरुपयोग कराती है। ऐसा दुरुपयोग अनेक प्रकार के रूप ले सकता है। यह शान्तिकार्य यातना, मानसिक कूरता, गान्त मनो-अधिशासन या दुरुपयोग का कोई भी रूप हो सकता है। अभिरक्षान्तर्गत यातना और अपराध के उत्तरे ही अनन्त रूप हो सकते हैं जिनमें मानव विकृति के हैं।

स्थिति, वस्तुतः विक्षण है। एक व्यक्ति, अन्य व्यक्ति के संपूर्ण अधिशासन के अधीन आ जाता है और वह दूसरा व्यक्ति (इस प्रकार अधिशासन में रखा गया) किसी इतर व्यक्ति के ठोस और तात्कालिक पर्यवेक्षण या परिवीक्षण के (सामान्यतः) अध्यधीन नहीं है।

2. 3 विधि की भूमिका

निःसंदेह, ऐसा पर्यवेक्षण और परिवीक्षण, विधि द्वारा किया जा सकता है और वस्तुतः एक ऐसे साधित का सृजन और अनुरक्षण विधि के अनिवार्य कृत्यों में से एक है जो विशिष्टतः अतिसंत्रेवनशीलता की

- पुलिस अभिरक्षा में कठि संबंधी विधि आयोग की 113वीं रिपोर्ट
- उत्तम लंब बनाम महसूद जेदा, ए० आई० आर० 1936, नागपुर, 200.
- श्रीम लाल बनाम उत्तम प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1954, इलाहाबाद, 687.
- मुविधा चेट्टियार बनाम गलेशन, ए० आई० आर० 1960, मद्रास, 91.
- परमहंस जादव बनाम उडीसा राज्य, ए० आई० आर० 1994, उडीसा, 144.
- जोधा लोडा रावरी बनाम गुजरात राज्य, 1992 किं ला० रि० 3298.
- प्रवर्तन निवेशालय धनाय वीपक सहाजन और अन्य, जे० टी० 1994 (1) एस० नी० 299, 306.

स्थितियों में अन्यायपूर्ण आचरण, अनाचार, दुरुपयोग और अल्पाचार के विशद्व निरोधक तत्व के रूप में कृत्य करेगा। जहां पर स्थिति प्रलोभन की है, वहां विधि, लोक के व्यस्त पर एक आरोध (ज्ञेक) के रूप में कार्य करेगी। जहां स्थिति वासना की है, वहां अपनी शास्त्रियों द्वारा, वाहना की लालसा को नियंत्रित करती है। जहां स्थिति, शोषण या अन्यायपूर्ण आचरण की है, वहां पर विधि की अपनी अदृश्य किन्तु सार्वभौम प्रभाव वाली भूमिका निभानी पड़ती है। और इसी कारण से विधि को उस स्वामी को दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए जिसे स्थिति की विलक्षणता जन्म दे।

कहने का आशय यह नहीं है कि एक अच्छी विधि वारित करता, अपने आप में सभी दुराइयों की ठीक करने के लिए पर्याप्त है। अच्छा विधान अनरंग भाँड़ है, किन्तु वही शुभारंग है। गिरफ्तारी (जिसमे यह पैरा संबद्ध है) के संबंध में विधिक फैसलक ऐसा होता है। चाहिए कि वह निरोधक प्रभाव की आपूर्ति कर सके जो मानव प्रकृति की कमज़ोरियों के कारण आवश्यक है। इसका लाली (अन्य बातों से अलग) यह है कि “गिरफ्तारी से संबंधित विधि” की ही अन्वरत पुस्तिलिङ्गक लाली होता है। चाहिए। “गिरफ्तारी से संबंधित विधि” में, नियवादतः हमें विनियोगित की जानिलाय करता है, (i) वे कानूनी उपबंध जो गिरफ्तार करने की व्यक्ति प्रदान करते हैं; (ii) व्यक्तियों के वे प्रकार जो गिरफ्तार करने के लिए सशक्त हैं; (iii) गिरफ्तारी और निरोध के संबंध में विधि में उपबंधित रक्षाधार्य, और (iv) संबद्ध विषय, जिसमें विशिष्टतया वे व्यक्तिप्रक और अस्तुप्रक उपादान ली हैं जिनका गिरफ्तारी की जाकर ज्ञात करना आवश्यक है। इन सभी पर विचार किया जाना आवश्यक है और हम समुचित स्थान पर उनकी चर्चा करेंगे।

2. 4 पुलिस से भिन्न अधिकारी

इस प्रकार पर, हम यह स्पष्ट करता जाहेंगे कि गिरफ्तार करने की शक्ति कबला पुलिस अधिकारियों को ही नहीं दी गई है। हमारे कानूनी फैसलक में, यह सत्ति, अनेक अन्य अधिकारियों को भी प्रदत्त की गई है। तकनीकी दृष्टिकोण चाहे जो भी हो, वे भी, सारा पुलिस अधिकारियों के सभान, प्राधिकारवाल व्यक्ति हैं। संभव है कि इस रिपोर्ट के आगे वाले पैरायोंमें लिखित है: और मुविधा के लिए, “पुलिस अधिकारी” और पुलिस दोनों का प्रयोग हो। किन्तु (जब तक कि संबंधी अस्तव्य (भीय न हो) यह परिचर्चा, यथावश्यक परिवर्तन सहित, पुलिस अधिकारियों से भिन्न उन अधिकारियों को भी दागू होती जिन्हें विधि प्रवर्तन का कर्तव्य सौंपा गया है और जिन्हें गिरफ्तार करने की और व्यक्तियों की अभिरक्षा में रखने की शक्ति प्राप्त है।

2. 5 दांडिक प्रक्रिया आरंभ करता

यदि, दुर्भायवश, अभिरक्षा में यातना या अन्य अपराध की घटना होती है तो दांडिक प्रक्रिया का अवलंब लेना स्पष्टतः आवश्यक हो जाता है। क्षामान्यतः भारत में दांडिक प्रक्रिया का आरंभ, पुलिस में सूचना प्रस्तुत करने या सक्षम अजिस्ट्रेट के विधायक वर्तमान विधि प्रवर्तन का बहुधा अपनाया जाने वाला क्रम है। तथापि जहां कोई अपराध करने के लिए अधिकारियों व्यक्ति स्वयं विधि के प्रवर्तन से संबद्ध अधिकारी हैं, वहां यह सदैव अधिक प्रभावशाली साजित नहीं हो सकता है। स्थिति का यही वह तत्व है जो नकारात्मक रूप से वह उपादान बन जाता है जो अनाचारों को सुकर बनाता है।

2. 6 चिकित्सीय परीक्षा

अभिरक्षा रखने वाले किसी अधिकारी द्वारा हिता के अपराधकर्ता की घटना के बारे में अधिकारियों को, किसी ठोस साध्य द्वारा साजित होता है। ऐसे मामलों में, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का परिसाक्षय बहुत ही विरलतः उपलब्ध होता है। किन्तु जात्यारपत्र अन्वयन विधिक अधिकारियों से भिन्न सामग्री होती है, परन्तु यह तब जब कि वह उपलब्ध हो। यह सुनिकित बहुत ही अपराध करने के लिए अधिकारियों व्यक्ति स्वयं विधि के प्रवर्तन से संबद्ध अधिकारी हैं, वहां यह सदैव अधिक प्रभावशाली साजित नहीं हो सकता है। स्थिति का यही वह तत्व है जो एसी जांच के लिए विधि में पर्याप्त रूप से उपबंध किया जाए। अतः इस पहलू पर, समुचित स्थान पर, विशेष व्याप्र दिया जाएगा।

2. 7 मृत्यु समीक्षा, अन्वेषण और जांच

जहां अभिरक्षान्तर्गत हिस्सा का परिणाम शिकार व्यक्ति की मृत्यु है, स्पष्टतः, मौलिक विधि असफल हो जाती है। किन्तु प्रक्रियात्मक विधि का अधिकार में आता आवश्यक है ताकि मृत्यु का तथ्य, मृत्यु के कारण, मृत्यु की रीति और अन्य सुसंगत तथ्य अधिनिश्चित हो सकें। यथासंभव, ऐसे तथ्यों का अधिनिश्चय,

- (क) उसके समय के बारे में जीव हो,
- (ख) उसके आवेषण में पर्याप्त हो,
- (ग) उसकी पद्धति विज्ञान में समग्र हो, और
- (घ) उसके अधिगम में निष्पक्ष हो।

वह अभीष्ट, जिसका हमने ऊपर की परिणाम के अंतिम स्थान पर उल्लेख किया है, निःसन्देह सर्वोच्च महत्व का है। इसी अभीष्ट के संबंध में वर्तमान स्थिति, समाधानप्रद नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि कानूनी विधि, दिविष्टतः दंड प्रक्रिया संहिता में इस विषय पर कुछ उपबंध हैं किन्तु अनुभव से यह उपर्योगी होना प्रतीत होता है कि उसमें इस निमित्त तीन प्रमुख खराबियाँ हैं। पहले स्थान पर यह है कि कार्यपालक भजिस्ट्रेट द्वारा व्यक्ति मृत्यु समीक्षा, संप्रति आज्ञापका है, ऐसे नामले अज्ञात नहीं जहां पुलिस अधिकारी भी जांच से जुड़े हुए हैं इस प्रकार भजिस्ट्रेट जांच के लिए उपबंध का मूल उद्देश्य ही परामूlt हो जाता है। दूसरा यह कि पुलिस या भजिस्ट्रेटों कोई आलोचना किए बिना, इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि ये मृत्यु समीक्षाएं संदेव लोक विश्वास को बढ़ावा नहीं दे पाती हैं। यह जांच आयोगों की नियुक्ति के लिए लगा गए भागों के सुन्दर है, जो जब कभी अभिरक्षान्तर्गत आता, बलात्तंग या मृत्यु होती है, तब नियुक्त भी किए जाते हैं। अन्तिमतः, यह मानते हुए कि किसी कार्यपालक दृष्टिकोण से जो भी सोचा जा सकता है उसमें सर्वश्रेष्ठ है, कठिनाई यह है कि ऐसी मृत्यु समीक्षाओं का परिणाम संदेव यह नहीं होता कि उनके विश्वेषण जो दोषी हो सकते हैं, समुचित दावेदारी का दर्शन की जा सके।

2. 8 साक्ष्य की बाबत कार्यान्वयः सबूत की कठिनाई

अब हम, साक्ष्य के क्षेत्र में उठने वाली कानूनी विधियाँ व्यावहारिक समस्याओं पर विचार कर लें। अपनी प्रकृति से ही वह अपराध, जो उस समय होता है जब कि शिकार व्यक्ति अभिरक्षा में है, साक्षित कर पाना अत्यन्त कठिन है। वहीं बात यह (जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है) कि स्थिति ऐसी होती है कि शिकार व्यक्ति पूर्णतः अपराध के अविकृतित कर्ता का वशर्ती है। इसलिए शिकार व्यक्ति उसके बारे में बताने से भयमीन होगा। इसरे, स्थिति ऐसी है कि कोई भी ऐसा इतर व्यक्ति सामान्यतः उपस्थित नहीं रह सकता, जो मौलिक परिसाक्ष्य दे सके। यहां तक कि जहां यह संभाव्यता है कि अभिरक्षान्तर्गत हिस्सा की गई थी, उस घटना को अभिरक्षा के साथ जोड़ पाना और न्यायालय के समाधानप्रद रूप में यह स्थापित कर पाना कठिन है कि (i) प्रश्नगत अपराध किया गया था; और (ii) अपराध, अभिरक्षक द्वारा किया गया था।

2. 9 प्रकटीकरण संबंधी बयानों के लिए मजबूर करने में बल का प्रयोग करना

पूर्ववर्ती पैरा में, उठाए गए प्रश्न से पृथक्, साक्ष्य विधि से संबंधित एक अन्य विषय भी है, जिसके बारे में हमारा विश्वास है कि अभी भी उसका अन्यान्य व्यावहारिक महत्व है। इस समस्या की जड़ें, साक्ष्य अधिनियम में अन्विष्ट एक अत्यधिक विलक्षण उपबंध, अर्थात् धारा 27 में है। अधिनियम की योजना में, किसी व्यक्ति द्वारा, पुलिस अभिरक्षा में कोई गई संस्वीकृति, ग्राह्य नहीं है। परंतु के रूप में, धारा 27 में यह अविकृति है कि यदि कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी तथ्य को प्रकट करने के बारे में कोई कथन करता है तो वह संस्वीकृति की कोटि में आता हो या नहीं। इस धारा की स्थिति और असंगत भाषा के द्वारा भिन्न-भिन्न व्याकारणिक समस्याएं और भाषा संबंधी अस्पष्टताएं उत्पन्न हो गई हैं। हमारा वर्तमान चिन्तन, और तात्कालिक विषयों से सम्बद्ध है। यह तथ्य कि किसी कथन को ग्राह्य भाना जा सकता है यदि यह विचारण न्यायालय द्वारा “प्रकटीकरण कथन” में निर्दिष्ट है और प्रकटीकरण कथन के रूप में चिह्नित संस्वीकृति के रूप में विचारण में प्रस्तुत किया गया है, यह तथ्य जो प्रत्येक पुलिस अधिकारी को सुन्नत है, ऐसा कथन उपाय करने के लिए अनुचित साधन के प्रयोगार्थ पुलिस अधिकारी के लिए एक लोकर के रूप में कार्य करता है। पुलिस को यह जान है कि व्यावहारिक बुद्धिमत्ता, पीढ़ियों के अनुभव और गहन चिन्तन पर आधारित प्रतिवेदी का निवारण करने की यह आसान पद्धति है। ऐसा कहना

रुचिकर नहीं है, किन्तु कहना आवश्यक है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27, इस अर्थ में अन्यान्य विषयों की उत्पादक रही है कि संस्वीकृति के उदापन के लिए एक ललक पैदा कर देती है, जो, अपनी बारी में, प्रपीड़न की सूक्ष्म पद्धतियों का अबलंब लेने की ओर व्यग्रसर करती है। संगत स्थान पर हम धारा के संबंध में समुचित विद्यायी कार्रवाई के लिए सुझाव देंगे। इस समय, तो हमें इतना ही कहना है कि यदि ईमानदारी से विधि प्रवर्तन के भागों को प्रोत्तर किया जाना है, तो इस धारा की कठोर शल्य किया करना आवश्यक होगा।

2. 10 पुलिस का संगठन¹

ईमानदार और दधि विधि प्रवर्तन की विषय वस्तु पर विचार करते समय हमें पुलिस के संगठन से संबंधित एक महत्वपूर्ण पहलू का भी उल्लेख करना आवश्यक लगता है। कुल मिला कर, भारत में पुलिस का संगठन इस प्रकार का है कि अन्वेषण के कृत्य और विधि व्यवस्था के अनुरक्षण के कृत्य के बीच कोई कठोर विभाजक रेखा नहीं खींची गई है। अन्वेषण के लिए धर्य, कौशल, दीर्घकालीन प्रथाएँ और उच्च स्तर की विशेषज्ञता अपेक्षित है। विधि और व्यवस्था के अनुरक्षण में स्थल पर अतिं त्वरित कार्रवाई तत्काल अनुक्रिया की भनः शक्ति, चित्त की दृढ़ता और विनियोगक अभिगम पर विचार करना पड़ता है। अन्वेषण में लगे अधिकारी को स्थयों का संग्रह, वास्तविकता की खोज, गत की पुनः संरचना तथा साभग्री के संपूर्ण सप्तक का विश्लेषण करना पड़ता है। विधि और व्यवस्था, सुरक्षा और वैसे ही अन्य विषयों से सम्बद्ध कर्तव्यों के दिवाहि में लगे अधिकारी को, दूसरी ओर, क्षणभर में वास्तविकता को सम्बन्धित तथा लात्कालिक और प्रभावशाली अनुक्रिया प्रदर्शित करना पड़ता है। यदि किसी पुलिस अधिकारी को, सम्बन्धित पर, आपात कर्तव्यों के लिए इधर-उधर भेजा जाता है तो उससे अन्वेषण के निर्धारित पथ की अपनाने की प्रत्यावाहा नहीं की जा सकती है, और वह कम बाल्की विषयों को अपनाने के लिए लालियत हो सकता है। उसके प्रपीड़न की ललक में परिणत हो जाने की पूर्ण संभावना है। पुलिस संगठन से उत्पन्न होने वाले अनेक अन्य उपादान हैं जो प्रपीड़न के अंगीकारण में योगदायी हैं। हम इस रिपोर्ट के परवर्ती अध्याय में उन पर कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

निवंचन, गिरफ्तारी के अधीन या अभिरक्षा के अधीन किसी व्यक्ति को थातना, हमला या अस्ति के विरुद्ध संवैधानिक गारंटी को घायल करते हुए किया गया है। दृष्टांत स्वरूप कुछ विनियोग निम्नलिखित हैं:

- (i) ऐसा दंड, जिसमें यातना का तत्व है, असंवैधानिक है।¹
- (ii) कारावास के निवंचन, जो यातना, दबाव या अधिरोपण के तुल्य हैं तथा ध्यायालय का आदेश जितना प्राधिकृत करता है उससे परे जाना, असंवैधानिक है।²
- (iii) किसी विचारणाधीन या सिद्धांशु वंदी को ऐसे शारीरिक या मानसिक अवरोध के अधीन नहीं किया जा सकता, जो—
 - (क) ध्यायालय द्वारा दिए गए दंड द्वारा अधिदिष्ट नहीं हैं, या
 - (ख) वंदी के अनुशासन की अपेक्षा से अधिक हैं, या
 - (ग) मानव तिरस्कार के तुल्य हैं।³

3.4 अनुच्छेद 22

संविधान के अनुच्छेद 20 द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध, दाँड़क प्रक्रिया से सीधे संभव हैं। अनुच्छेद 20(1) दंड विधान के भूतलकी प्रत्यंत वा प्रतिषेध द्वारा है। अनुच्छेद 20(2) एक ही अपराध के लिए दोहरे संकट से रक्षा करता है। अनुच्छेद 20(3) में यह उपबंध है कि किसी अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति को सबसे अपर्याप्त विश्वद काली होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। ये तीनों दंड तीन विषय विषयों या पहलुओं से संबंधित प्रतीत ही दर्शते हैं, परन्तु इस सन्दर्भ में एक अंतर्निहित साधान्य तथ्य अर्थात् यह सुनिश्चित करते की जितना विद्यान है कि दाँड़क बाध्य यातारी के विभिन्न पहलुओं मौलिक, प्रक्रियात्मक और साक्षिक का प्रयोग अभियुक्त व्यक्ति को सताने के लिए नहीं किया जाएगा। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाए तो साधान्य प्रतिवाद यह है कि दाँड़क बाध्य यातारी का प्रशासन इस प्रकार डिजाइन या कार्यान्वयन नहीं किया जाना चाहिए जिससे बाध्य के ही गहन और नैतिक मूल्य विनष्ट हो जाएं।

निःसंदेह, अनुच्छेद 20(3) सबसे अधिक प्रत्यक्षतः सुसंगत है। संविधान और विधि, परिसाक्षिक अनिवार्यता के विश्वद इस आधार पर संरक्षण करते हैं कि ऐसी अनिवार्यता अभियुक्त पर सूक्ष्म प्रपीड़न के रूप में कार्य कर सकती है।⁴ यह ऐसा सूख्य है कि सूक्ष्म अधिकार की प्राप्तिवति वीर्य गई है किन्तु जो अनेक कानूनी उपबंधों, विशिष्टतः दाध्य अधिनियम की धारा 24 से धारा 26 तक, (ऐसा पक्ष जिसकी प्रायः अपेक्षा की जाती है) का अंतर्निहित प्रतिपाद भी है। अनुच्छेद 20(3) जैसे ही औपचारिक अभियोग किया जाता है, किसी अधियोगके प्रारंभ के पूर्व या उसकी प्रियासनता के दौरान,⁵ प्रवर्तन में आ जाता है।

3.3 अनुच्छेद 21

संविधान के अनुच्छेद 21 में यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विविध द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुचाल ही विविध किया जाएगा, अन्यथा नहीं। “विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया” शब्दों का व्यापक निर्विचलन जिए जाने के प्रारंभ, इस अनुच्छेद के अंतर्गत अनेक प्रकार के सरकारी कृत्य, जिनका दैहिक स्वतंत्रता दूर करना है, जो जाते हैं। इस अनुच्छेद पर निर्णय जन्य विधि इतनी अधिक जटिल है कि कोई भी व्यक्ति अपि गहन अध्ययन किए जिन, इस अनुच्छेद के सबसे विस्तार को नहीं समझ सकता और कोई भी दीर्घ परिचर्चा के बिना इसके साथ पूरी तरह न्याय नहीं कर सकता। किन्तु, संप्रति हमारा कार्य-क्षेत्र, अभिरक्षान्तर्गत अपराध के संबंध में अनुच्छेद 21 सुसंगतता की ओर ध्यान अकर्वित करने तक ही परिसीमित है। अनुच्छेद 21 में यातना या अभिरक्षान्तर्गत अपराध के विरुद्ध कोई अभियुक्त उपबंध नहीं है, किर भी अनुच्छेद में आने वाले “प्राण या दैहिक स्वतंत्रता” अभिव्यक्ति का

1. स्मृत वनाम डाइरेक्टर, सीरियस फ्राइ अफिसर, (1992) 3 अल० १० आर० ४५६, ४६३, लार्ड मस्टिल्स का निर्णय।

2. दस्तावेज वनाम स्मृत राज्य ए० आई० आर० १९६० ए० सी० १८५९। १९७८ ए० सी० १०२५ पैरा ३०; जालविकान वनाम राज्य, ए० आई० आर० १९८१ ए० सी० २७९।

अनुच्छेद 22(2) के अधीन मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने का अधिकार, अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने के लिए आशयित है कि:-

- (i) निरोध की वैधता की एक स्वतंत्र छानबीन हो जाएगी,
- (ii) जमानत पर निर्मुक्ति पाने के लिए एक उचित और प्रभावी अवसर प्राप्त होगा,

3. इत्वरजीत वनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए० आई० आर० १९७५ ए० सी० १८६७।

4. शीला वासं वनाम स्मृत राज्य, ए० आई० आर० १९८३ ए० सी० ३७८; जावेद वनाम स्मृत राज्य, ए० आई० आर० १९८५ ए० सी० २३।

5. सुलील वना वनाम विली प्रशासन, ए० आई० आर० १९७८ स० सी० १६७५; सीताराम वनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए० आई० आर० १९७९ ए० सी० ७४५; सुलील वना वनाम विली प्रशासन ए० आई० आर० १९८० ए० सी० १७७९ पैरा ३१, ४२; जावेद वनाम स्मृत राज्य, ए० आई० आर० १९८५ ए० सी० २३१, पैरा ४; शेर सिंह वनाम स्मृत राज्य, ए० आई० आर० १९८३, ए० सी० ४६५ पैरा १।

(iii) एक ऐसा मार्ग उपलब्ध होगा जहाँ निरुद्ध व्यक्ति, अपनी व्याधा, जो अभिरक्षा में उसके साथ किए गए व्यवहार के लिए उत्तम हो सकेगी, प्रकाश में ला सकेगा।

अनुच्छेद 22 (1) और 22 (2) के उपबंधों के बीच आवश्यक संबंध को महसूस करते हुए, व्याधालयों ने यह अभिनिधारित किया है कि अनुच्छेद 22 के खंड (1) और (2) आज्ञापक हैं।¹

3.5 भारतीय दंड संहिता: साधारण स्कीम

देश की साधारण दौड़िक विधि को समाविष्ट करने वाली एक अधिनियमिति के रूप में भारतीय दंड संहिता ऐसे आवरण के विरुद्ध दौड़िक व्यास्तियों का सूजन करने की ज़रूरत के परे ध्यान देने का लोप नहीं करती जो किसी अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे कृत्य के साध्यम से, और दंडनीय होना चाहिए, अपहानि करता है। इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि संहिता, अमूर्त हालि की भी इतनी सूचना देती है, जितनी मूर्त हालि की। संहिता की धारा 44 की परिभाषा, जो “क्षति” पद को परिभाषित करती है शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की अपहानि को समाविष्ट करती है।

संहिता के उपबंध, जो वर्तमान प्रयोजन के लिए सुरक्षित हैं, दो प्रवर्गों के अंतर्गत आते हैं—

- (i) वे उपबंध, जो अपहानियों के विनिर्दिष्ट प्रवारों के विरुद्ध व्यक्तियों के सभी प्रवर्गों के संरक्षण के लिए लागू होते हैं, ऐसे उपबंध, पर्याप्त व्यापक भाषा में अभिव्यक्त होने के कारण, अभिरक्षा में व्यक्तियों को भी लागू होते हैं (यद्यपि उन्हीं तक सीमित नहीं हैं), और
- (ii) वे उपबंध जो विनिर्दिष्ट अभिरक्षा में व्यक्ति के संरक्षण पर केंद्रित हैं।

इस प्रकार, दंड संहिता के अध्याय 16 (मानव शरीर के विरुद्ध अपराध) में अंतर्विष्ट अधिकातर उपबंध अभिरक्षा में व्यक्तियों और साथ-ही-साथ अन्य व्यक्तियों को समाविष्ट करते हैं। इसके प्रतिकूल, दंड संहिता की धारा 330, विनिर्दिष्ट संस्थीकृति उद्दापित करने के लिए उपहति कारित करने के सदर्भ में है (यद्यपि इसमें कारित अन्य कृत्य भी आते हैं)।

3.6 धारा 166 और 167

दंड संहिता की धारा 166 निम्नवत् है :

“166. जो कोई लोक सेवक होते हुए विधि के किसी ऐसे निदेश को जो उस दंग के बारे में हो जिस दंग से लोक सेवक के नाते उसे आचरण करना है जानते हुए अवज्ञा इस आशय से, या संभाव्य जानते हुए करेगा कि ऐसी अवज्ञा से किसी व्यक्ति को क्षति कारित करेगा वह सादा कारावास से, जिस की अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुमनि से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।”

इसकी पुनरावृत्ति की जा सकती है कि “क्षति” अभिव्यक्ति के अंतर्गत अपहानि, जो शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति को अवैध रूप से कारित हुई है आती है।

धारा 167 ऐसे लोक सेवक को, जो क्षति कारित करने के आशय से अशुद्ध दस्तावेज रखता है, दंड के लिए उपबंध करती है।

3.7 धारा 220

संहिता की धारा 220 ऐसे व्यक्ति के लिए (व्यक्तियों, आदि को परिरुद्ध करने के विधिक प्रधिकार संहिता) दंड का उपबंध करती है, जो अष्टप्रापुर्वक या विद्वेषपूर्वक किसी व्यक्ति को, यह जानते हुए कि ऐसा करने में वह विधि के प्रतिकूल कार्य कर रहा है; परिरुद्ध करता है।

1. गोपालन बनाम भद्रास राज्य, 1950 एस० सी० आर० ८८, हंसमुख बनाम गुजरात राज्य, ए० आई० आर० १९८१ एस० सी० २८; सध्य प्रवेश राज्य बनाम शोभा राम ए० आई० आर० १९६८ एस० सी० १९१०, १९१७।

3.8 धारा 330, 331

भारतीय दंड संहिता का अध्याय 16 (मानव शरीर पर प्रभाव डालने वाले अपराध) संहिता का दूसरा सबसे बड़ा अध्याय है। इसमें निम्नतम प्रमाणा के शारीरिक आक्रमण (हमले) से लेकर शारीरिक अपहानि के उच्चतम प्रवर्ग, अर्थात् मानव जीवन के निर्वापन तक शरीर के प्रायः प्रत्येक किसी के अवरोध, हस्तक्षेप या अपहानि के लिए दंड का उपबंध है। तथापि, वर्तमान प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है कि कतिपय एसी विनिर्दिष्ट धाराओं तक परिचर्चा को सीमित रखना पर्याप्त है जो अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से प्रत्यक्षतः सुरक्षित है। धारा 330 के अधीन, कोई व्यक्ति जो कोई संस्थीकृति या कोई जानकारी जिससे किसी “अपराध या अवचार का पता चल सके” उद्दापित करने के लिए या किसी संपत्ति, आदि का प्रत्यावर्तन भजबूर करने के लिए स्वेच्छावा उपहति कारित करेगा, सात वर्ष तक के कारावास से और जुमनि से दंडनीय होगा। दृष्टान्त (क) और (ख) विशेष संगति के हैं जो निम्नवत् हैं :

“(क) क, एक पुलिस अफिसर, या को यह संस्थीकृति करने को कि उसने अपराध किया है, उत्प्रेरित करने के लिए यातना देता है। क इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।

(ख) क, एक पुलिस अफिसर, यह बतलाने को कि अमूक चुराई गई संपत्ति कहाँ रखी है उत्प्रेरित करने के लिए ख को यातना देता है कि इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।”

धारा 331 उस व्यक्ति को दंड का उपबंध करती है जो संस्थीकृति उद्दापित करने के लिए या विवश करके संपत्ति या प्रत्यावर्तन करने के लिए घोर उपहति कारित करेगा। अपराध 10 वर्ष तक के कारावास से और जुमनि से दंडनीय है।

3.9 धारा 340 से धारा 348 तक

भारतीय दंड संहिता की धारा 340 से 348 तक की धाराएं सदोष अवरोध, और सदोष परिरोध तथा उनको गुहता से संबंधित हैं। निःसन्देह, वे यह विवार करती हैं कि परिरोध एक संघटक जो “सदोष” विवेषण द्वारा प्रमुखता से स्पष्ट किया गया है अपने आप में ही अवैध है। किन्तु हमें धारा 348 को निवेशित करना होगा जिसमें उस व्यक्ति को दंड के लिए उपबंध है जो किसी संस्थीकृति आदि के उद्दापन के लिए किसी व्यक्ति को सदोष परिरुद्ध करता है। यह धारा ऐसी जानकारी जिससे किसी अपराध या अवचार का पता चल सके, निकालने के लिए किए गए उद्दापन को भी दंडित करती है।

3.10 धारा 376 (2)

भारतीय दंड संहिता का दूसरा उपबंध जो, ध्यान देने योग्य है, धारा 376 (2) है जो पुलिस अफिसर और अन्य लोक सेवकों, अप्तालों और महिला संस्थाओं, आदि के भारसाधक व्यक्तियों, द्वारा किए गए बलात्संग के वर्गित रूप के संबंध में है।

3.11 धारा 376ख से धारा 376ध तक

अभिरक्षान्तर्गत लैंगिक अपराधों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 376ख से 376ध तक विशेष रूप से ध्यान दिया गया है जो निम्नलिखित के संबंध में है—

(क) किसी लोक सेवक द्वारा अभिरक्षा में किसी स्वीकृति के साथ संभोग,

(ख) जेल, प्रतिप्रेषण गृह, आदि के अधीक्षक द्वारा संभोग,

(ग) अस्पताल के प्रबंधतात्व के सदृश्य या कर्मचारिवृन्द द्वारा अस्पताल के किसी अंतःवासी के साथ संभोग।

3.12 धारा 503 और धारा 506

आपराधिक अभिवास, भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के साथ पठित धारा 503 द्वारा दंडनीय है।

3. 13 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 : साधारण ब्रेक्षण

वर्तमान रिपोर्ट की विषय वस्तु के साथ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की सुसंगति द्वि-आयामी है प्रबन्ध संहिता में ही अधिकारात्मक वातना के विरुद्ध रक्षणात्मक कार्य करने के लिए आशयित उपबंध अंतर्विष्ट है। वे उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे सकारात्मक पहलू कहा जा सकता है। इसे, संहिता के उन उपबंधों को, जो विधि प्रवर्तन अधिकारणों को विधिन्थन शक्तियां प्रदत्त करते हैं, जहां तक वे प्राधिकार के दुरुपयोग की संभावना का संज्ञन कर सकते हैं, ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। इसे नकारात्मक पहलू माना जा सकता है। उपबंधों के इन दो प्रवर्गों के अतिरिक्त, हमारा संबंध इस प्रश्न से है कि संहिता के उपबंधों की अधिकारात्मक अपराधों के प्रतिनिर्देश से कहां तक अनुपूर्ति किए जाने की आवश्यकता है ताकि ऐसे अपराधों की बाबत अन्वेषण, विचारण, दंड और उपचारी उपायों पर संहिता की स्कीम में पर्याप्त रीति से ध्यान रखा जा सके।

सुविधा की दृष्टि से हम संहिता के उपबंधों पर ध्याराओं के अनुसार और साथ ही साथ उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए चर्चा करेंगे।

3. 14 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 : धारा 41 : गिरफ्तारी

गिरफ्तार करने की जाकित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को प्रदत्त की गई है। वर्तमान प्रयोजन के लिए धारा 41 (क) सर्वाधिक भहत्वपूर्ण उपबंध है व्ययोंकि इस उपबंध के अधीन कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और बारेट के बिना किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है।

"(क) जो किसी संसेय अपराध से संबद्ध रह चुका है या जिसके विरुद्ध इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है विश्वसनीय इतिलाप्राप्त हो चुकी है या उचित संदेह विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है।"

3. 15 धारा 49 : अवरोध

संहिता की धारा 49 में यह उपबंध है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवरुद्ध न किया जाएगा जितना उसको निकल भागने से रोकने के लिए आवश्यक है। इसमें उसके निकल भागने के निवारण पर जोर दिया गया है जिससे अवरोध को आवश्यकता पड़ सकती है। तथापि, उसी के साथ-साथ, अवरोध की प्रमाणा आवश्यक अवद्ध द्वारा अति सतर्कतापूर्वक दरिभाषित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संपूर्ण उपबंध एक निश्चित प्रतिलेध से आरंभ होता है व्ययोंकि विधि का समावेश यह है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अनावश्यक अवरोध के अधीनीन नहीं किया जाएगा। किसी भी अधिक अवरोध से निश्चित रूप से तुकासानी के लिए बाद हेतुक उत्पन्न होगा व्ययोंकि ऐसे किसी मामले में, विधिपूर्ण प्राधिकार के सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त सिविल कार्रवाई से उन्मुक्ति लागू नहीं होगी। उपधारणतः, समुचित दांडिक धारा 34 भी भारतीय दंड संहिता की धारा 340 से धारा 348 तक के और उसी संहिता की धारा 349 से धारा 356 तक के भी जो हमला और अपराधिक बल से संबद्ध हैं, प्रतिनिर्देश से उपलब्ध होंगे। यदि विधिपूर्ण प्राधिकार अधिक ही जाता है तो दंड संहिता की धारा 76 से 79 तक के अधीन अन्यथा उपलब्ध संरक्षण का उस परिणाम के साथ दावा नहीं दिया जा सकता है कि दांडिक कार्रवाई गलती करने वाले लोक सेवक के विरुद्ध चलाने योग्य होंगे।

3. 16 धारा 50 : गिरफ्तारी के आधार

यह धारा निम्नवत् है:-

"50. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधारों और जमानत के अधिकार की इतिलापी जाना।

(1) किसी व्यक्ति को वारेट के बिना गिरफ्तार करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति को उस अपराध की, जिसके लिए वह गिरफ्तार किया गया है, पूर्ण विशिष्टियां या ऐसी गिरफ्तारी के अन्य आधार तुरंत सूचित करेगा।

(2) जहां कोई पुलिस अधिकारी अजमानीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति को बारेट के बिना गिरफ्तार करता है वहां वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इतिलापी देगा कि वह जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है और वह अपनी ओर से प्रतिभुजों का इंतजाम करे।

धारा 50, को विशिष्टतः संविधान के अनेकों 22(1) के परिप्रेक्ष्य के आजापक माना गया है जिससे कि इस धारा का अननुपालन, गिरफ्तारी और निरोध को अवैध बना देता है।

3. 17 धारा 53 : अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा

कतिवय परिस्थितियों में अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा आवश्यक हो सकती है और संहिता की धारा 53 द्वारा इसको ध्यान में रखा गया है। विधि की जैसी वर्तमान स्थिति है कि उसके अनुसार उप निरीक्षक से अनिम्न पंक्ति के पुलिस अधिकारी की प्रार्थना पर किसी रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा व्यवसायी के लिए अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा करना विधिपूर्ण है, यदि वह विश्वास करने के लिए उचित आवार है कि उसकी शारीरिक परीक्षा ऐसा अपराध किए जाने के बारे में साक्ष्य प्रदान करेगी। इस प्रयोजन के लिए ऐसा बल जो उचित रूप से आवश्यक है प्रयुक्त किया जा सकता है। किसी स्वीकी दशा में, धारा 53 (2) यह उपबंध करती है कि परीक्षा बेवल किसी महिला द्वारा, जो रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा व्यवसायी है या उसके पर्यवेक्षण में कोई जाएगी। यह उपबंध, स्पष्टतः ऐसी परीक्षा के समय लैगिक अनाचार के विरुद्ध अधिकार के लिए आशयित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि संहिता का संशोधन करने के लिए, राज्य सभा में (9 मई, 1994) की पुरुष स्थापित हाल के 1994 के विधेयक संख्या के 39 में यह स्पष्ट करने की बांधा की गई है कि "परीक्षा" के अंतर्गत खून, लैगिक हमले की दशा में रवाब, बालों के नमूने और नाखून की कतरनों की परीक्षा और ऐसे अन्य परीक्षणों का किया जाना भी है, जिन्हें रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा व्यवसायी किसी विशिष्ट सामग्री में आवश्यक समझता है। ऐसा लगता है कि स्पष्टीकरण इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में बांधनीय समझा गया है कि रोगविज्ञानीय परीक्षण, कितिपय न्यायालयों के समक्ष (यद्यपि विधेयक के खंडों पर टिप्पण में इस पक्ष का उल्लेख नहीं है) विचार का विषय रहा है।

3. 18 धारा 54 : गिरफ्तार व्यक्ति की प्रार्थना पर चिकित्सीय परीक्षा

संहिता की धारा 54 किसी गिरफ्तार व्यक्ति को अपने शरीर की जांच कराने का अधिकार प्रदान करता है यदि अधिकार प्राप्त हो जाए तो विधिक व्यक्ति से ऐसी साक्ष्य प्राप्त होगा जो उसके द्वारा, किसी व्यक्ति के विरुद्ध, किसी अपराध के किए जाने को नालाभित कर देगा। इस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गिरफ्तार व्यक्ति को यह सूचना देना मजिस्ट्रेट को कर्तव्य है कि यदि उसे यातना अनाचार आदि का कोई परिवाद है तो उसे अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने का ऐसा अधिकार प्राप्त है।³

यह उल्लेखनीय है कि संहिता का संशोधन करने के लिए वर्तमान विधेयक (राज्य सभा विधेयक सं. 35, 9 मई, 1994) में धारा 54 में निम्नलिखित उपधारा जोड़े जाने की प्रस्थापना है:-

"(2) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई परीक्षा की जाती है, वहां रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा व्यवसायी ऐसी परीक्षा की रिपोर्ट गिरफ्तार किए गए व्यक्ति या इस प्रकार नामिनिष्ट व्यक्ति द्वारा निवेदन किए जाने पर उन्हें देगा।"

ऐसा लगता है कि इस प्रस्थापना का सुझाव, इस तथ्य द्वारा किया गया है कि 1984 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 1 द्वारा, धारा 54 के अंत में निम्नलिखित वाक्य अंतः स्थापित करके उस धारा का संशोधन किया गया है।

"रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा व्यवसायी ऐसी परीक्षा की रिपोर्ट की एक प्रति, निःशुल्क गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को तत्काल उपलब्ध कराएगा।"

1. अधोक बनाम राज्य, 1987 किंला०ज० 1750।

2. शोला जोत बनाम अहारास्त्र राज्य, ए० आई० आर० 1983 ए० सी० 378 : 1983 किंला०ज० 642।

95-M/J(D)127MofLJ&CA-2(a)

3. 19 धारा 56, 57 और 58 : गिरफ्तारी के पश्चात् कार्रवाई

संहिता की धारा 56 में यह उपबंध है कि वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी अनावश्यक विलंब के बिना और जमानत से संबंधित उपबंधों के अधीन रहते हुए, उस व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है, उस मामले में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष या किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष भेजेगा। धारा 57 के अनुसार कोई पुलिस अधिकारी वारण्ट के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवधि के लिए अधिकारिता में निश्चिन्ता रखेगा जो उस मामले को तब परिस्थितियों में उचित है तथा ऐसी अवधि मजिस्ट्रेट के धारा 167 के अधीन विशेष आदेश के अधाव में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर, चौबीस घण्टे से अधिक की नहीं होगी। धारा 57 के उपबंध आजापक हैं।¹

धारा 58 में यह उपबंध है कि पुलिस थानों के भारसाधक अधिकारी जिला मजिस्ट्रेट को, या उसके ऐसा निदेश देने पर, उपर्युक्त मजिस्ट्रेट को, अपने-अपने थानों की सीमाओं के अन्दर वारण्ट के बिना गिरफ्तार किए गए सब व्यक्तियों के मामलों की रिपोर्ट करेंगे, चाहे उन व्यक्तियों की जमानत ले ली गई हो या नहीं।

इन धाराओं का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पुलिस द्वारा, दीर्घकालीन निरोध का अवलंब न लिया जाए और निश्चिन्ता को मजिस्ट्रेट को ऐसी काई समस्या बताने का अवसर प्राप्त हो जाए जिसका इसे गिरफ्तारी के बाद सामना करना पड़ा हो।

3. 20 धारा 75 और 76 : वारण्ट के अधीन गिरफ्तारी

जहां दब प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी वारण्ट पर दी जाती है, वहां संहिता की धारा 70 से 81 तक लागू हो जाती है, जिनमें से धारा 75 और 76 वर्तमान प्रयोजन के लिए सुनिश्चित हैं। वे निम्नवत् हैं:—

“75. वारण्ट के सार की सूचना—पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन कर रहा है, उस व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार करना है, उसका सार सूचित करेगा और यदि ऐसी अपेक्षा की जाती है तो वारण्ट उस व्यक्ति को दिखा देगा।

76. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का न्यायालय के समक्ष अविलंब लाया जाना—पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन करता है गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को (धारा 71 के प्रतिभूति संबंधी उपबंधों के अधीन रहते हुए) अनावश्यक विलम्ब के बिना उस न्यायालय के समक्ष लाएगा जिसके समक्ष उस व्यक्ति को पेश करने के लिए वह विधि द्वारा अपेक्षित है:

परन्तु ऐसा विलम्ब किसी भी दशा में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घण्टे से अधिक नहीं होगा।”

3. 21 धारा 154 : संज्ञेय मामलों में इतिला

किसी अपराध की बाबत दांडिक प्रक्रिया का अवलंब लिया जा सके, इस क्रम में दब प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन अभियान की दी प्रमुख पद्धतियां उपलब्ध हैं। यदि अपराध संज्ञेय है तो कोई व्यक्ति मामले की रिपोर्ट, पुलिस को कर सकता है। विकल्पतः वह चाहे अपराध संज्ञेय हो या नहीं मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद कर सकता है। संहिता की धारा 154 किसी संज्ञेय मामले की सूचना, पुलिस को दिए जाने के संबंध में है। वर्तमान रिपोर्ट में इस धारा की सुनिश्चित, साधारण है, यह धारा सभी संज्ञेय अपराधों को लागू होती है अतः उसमें पुलिस द्वारा सदौषित गिरफ्तारी या यातना आदि से संबंध अपराध भी शामिल होंगे धारा 154 की स्थीरता का, सुविधा के लिए निम्नवत् विश्लेषण किया जा सकता है:—

(क) किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को दी गई इतिला, लिखित रूप में दी जाएगी;

1. चौबी बनाम विद्युत राज्य द० आई० आर० 1981, एस० सी० 928: क्र० ला० ज० 470.

- (ब) उस पर उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे, जो उसे दे और उसका सार, चिह्नित पुस्तक में प्रदिव्यष्ट किया जाएगा;
- (ग) अभिलिखित इतिला की प्रति, इतिला देने वाले व्यक्ति को तत्काल निःशक्त दी जाएगी;
- (घ) यदि पुलिस द्वारा इतिला को अभिलिखित करने से इंकार किया जाता है तो व्यक्ति व्यक्ति, इतिला का सार द्वारा संबद्ध पुलिस अधीक्षक को देगा। यदि पुलिस अधीक्षक का यह समाधान ही जाता है कि इतिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो वह या तो स्वयं मामले का अन्वेषण करेगा, या अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को ऐसा करने का निदेश देगा।

यह अधिनिर्धारित किया गया है कि पुलिस अन्वेषण आरंभ करे, उसके पूर्व संज्ञेय अपराध के किए जाने की उचित आशंका होनी आवश्यक है।

3. 22 धारा 160 : साक्षियों की हाजिरी

पुलिस की शक्तियों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपबंध संहिता की धारा 160 (1) में अंतर्विष्ट है, जो निम्नवत् है:

“160. साक्षियों की हाजिरी को अपेक्षा करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति—(1) कोई पुलिस अधिकारी जो इस अध्याय के अधीन अन्वेषण कर रहा है, अपने थाने की या किसी पास के थाने की सीमाओं के अन्दर विद्यमान किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसका दी गई इतिला से या अन्यथा उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित होना प्रतीत होता है, अपने समक्ष हाजिर होने की अपेक्षा लिखित आदेश द्वारा कर सकता है और वह व्यक्ति अपेक्षानुसार हाजिर होगा:

परन्तु किसी पुरुष से जो पन्द्रह वर्ष से कम आयु का है या किसी स्त्री से, ऐसे स्थान से जिसमें ऐसा पुरुष या स्त्री निवास करती है, भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।”

इस धारा का, परंतु क्षेत्र में अंतर्विष्ट, अभिव्यक्त प्रतिषेध को देखते हुए विशिष्ट महत्व है क्योंकि उसमें किसी भी आयु की स्त्री को और पन्द्रह वर्ष से कम आयु के पुरुष को उस स्थान से भिन्न स्थान पर समन नहीं किया जाएगा, जहां वह निवास करते हैं। विधायिका ने, यदि धारा का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो प्राधिकार के दुरुपयोग की संभावना को, लगता है, ध्यान में रखा है।

3. 23 धारा 163 : उत्प्रेरण का प्रतिषेध

इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि अधिकारा में किसी व्यक्ति को कोई संस्वीकृति करने के लिए, किसी परोक्ष प्रभाव के अधीन किया जा सकता है, संहिता की धारा 163 (1) अभिव्यक्त रूप से उपबंध करती है कि कोई पुलिस अधिकारी या प्राधिकार वाला अन्य व्यक्ति भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 24 में व्यावर्णित कोई उत्प्रेरण, धमकी या बचन न तो देगा और न करेगा तथा न दिलवाएगा और न कराएगा। सुविधा के लिए, हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 आगे उद्धृत कर रहे हैं:—

“24. उत्प्रेरण, धमकी या बचन द्वारा कराई गई संस्वीकृति दार्ढिक कार्यवाही में कब विसंगत होती है—अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दार्ढिक कार्यवाही में विसंगत होती है, यदि उसके किए जाने के बारे में न्यायालय को प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध आरोप के बारे में वह ऐसी उत्प्रेरण, धमकी या बचन द्वारा कराई गई है जो प्राधिकारवाल व्यक्ति की ओर से दिया गया है और जो न्यायालय की राय में इसके लिए पर्याप्त हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति को वह अनुपालन करने के लिए उसे युक्तियुक्त प्रतीत होने वाले आधार देती है कि उसके करने से वह अपने विरुद्ध कार्यवाहियों के बारे में एहिक रूप का कोई फायदा उठाएगा या एहिक रूप की किसी बुराई का परिवर्जन कर लेगा।”

1. दोता विद्यालय बनाम हिमाचल प्रदेश, 1992 क्र०ला०ज० 2400 (दिंप्र०); दोता नार्सि देवाउद बनाम फरीदा और देवेचा, 1991 क्र०ला०ज० 2694 (कन्टिक)।

3. 24 धारा 164: मजिस्ट्रेट के समक्ष संस्वीकृति

संहिता की धारा 164 में, दांडिक प्रक्रिया के लिए अत्यंत महत्व और प्रक्रिया में निष्ठा के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण कठिपथ उपबंध अंतर्विष्ट है। इस धारा के पूर्ण धृत्य का अनुभव तक पूरी तरह नहीं लगाया जा सकता जब तक कि हम भारतीय साक्ष्य अधिनियम और दंड प्रक्रिया संहिता के कठिपथ प्रमुख उपबंधों को ध्यान में रखें। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अनुसार किसी पुलिस अफिसर से की गई कोई संस्वीकृति उस व्यक्ति के विरुद्ध साबित नहीं की जाएगी जिसने वह संस्वीकृति की है। धारा 26 के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा की गई कोई संस्वीकृति, जो उसने उस समय की है जब वह पुलिस अफिसर की अभिरक्षा में ही, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात उपस्थिति में न की गई हो। साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 के अनुसार किसी पुलिस अफिसर की गई संस्वीकृति असंगत हो जाती है, इसके बावजूद विधायिका ने संहिता की धारा 164 अधिनियमित की है, जो एक प्रक्रिया है जिसके अधीन सधम मजिस्ट्रेट, किसी अन्वेषण के क्रम में या उसके पश्चात् किसी प्रक्रम पर, जांच या विचारण के प्रारम्भ होने के पूर्व, उसको की गई संस्वीकृति अभिलिखित कर सकेगा। अवहार में, जब यह पुलिस का भास्त्व होता है कि अभिरक्षा में कोई अभियुक्त व्यक्ति संस्वीकृति करना चाहता है तब उसे सधम मजिस्ट्रेट के सम्मुख ले जाया जाता है। जो, धारा 164 में विहित व्यापक औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् संस्वीकृति अभिलिखित करता है। वे औपचारिकताएं प्रायमिकता (i) मजिस्ट्रेट का समाधान कि संस्वीकृति स्वैच्छिक है, और (ii) कानूनी चेतावनी का समुचित अभिलेख जो उपर्युक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यित है; सुनिश्चित करने के लिए आशयित है।

बत्तमान प्रयोजन के लिए एक और पक्ष संगत है। जब कि संहिता की धारा 161 के अधीन, अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी, मास्टरों के तथ्यों से परिचित होने के लिए संभावित किसी व्यक्ति को मौखिक रूप से जांच कर सकता है और ऐसे व्यक्ति द्वारा विए गए कथन को लेखबद्ध वार सकता है। संहिता की धारा 162 यह उपबंध करती है कि कथन, साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित नहीं होना तथा यह भी कि कथन उस समय जब कथन किया गया था अन्वेषणाधीन विसी अपराध की बाबत किसी जांच या परीक्षण में किसी प्रयोजन (विधि में यथा उपबंधित के सिवाय) के लिए प्रयोग नहीं किया जाएगा। यही वह प्रक्रम है जब कि संहिता की धारा 164 उपयोगी हो जाती है। उस धारा के अधीन, सधम मजिस्ट्रेट किसी अन्वेषण के क्रम में या उसके पश्चात् किसी समय, विचारण के प्रारम्भ के पूर्व, उसको किए गए किसी कथन को, शपथ पर, अभिलिखित कर सकेगा।

3. 25 धारा 313: न्यायालय में अभियुक्त व्यक्ति की परीक्षा

संहिता की धारा 313 के अधीन, दांडिक न्यायालय से यह अपेक्षा है कि वह अभियोजन का भास्त्व पूरा हो जाने के पश्चात् अभियुक्त की, अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी परिस्थितियों का स्वयं स्पष्टीकरण करने में सहाय्य बनाने के लिए परीक्षा करे। चिन्तु धारा 313(2) अभियुक्त को शपथ दिलाने का प्रतिवेद वारती है।

3. 26 धारा 315: अभियुक्त व्यक्ति का साक्षी होना

संहिता की धारा 315, अभियुक्त व्यक्ति को प्रतिक्रिया के लिए सधम साक्षी बनाती है, जिस दश में वह आरोपों को नासाकृत करने के लिए शपथ पर साक्ष्य दे सकता है, इस प्रकार अभिसाधिक वाध्यत के विरुद्ध वह संवैधानिक प्रमुखिया का बाबत प्रदान वारती है। धारा 315(1) के परमत्वा (ख) में यह और उपबंध है कि अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य देने में असफलता को, पक्षवारों में से किसी के द्वारा या न्यायालय द्वारा टीका टिप्पणी या विषय न बनाया जाएगा और न उसे उसके विरुद्ध या किसी सहअभियुक्त के विरुद्ध कोई उपधारणा की जाएगी।

3. 27 धारा 357: प्रतिकर

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 दांडिक न्यायालय की किसी अपराध के शिकार व्यक्ति को, जब न्यायालय निर्णय पारित करता है तब प्रतिकर का अधिनिर्णय पारित करने के लिए सधम सकता वरती है।

आदेश के बहुत तभी पारित नहीं किया जा सकता जब न्यायालय जुर्माने का दण्ड देता है, अपितु तब भी दे सकता है जब वह जुर्माना अधिरोपित नहीं करता है। प्रतिकर का आदेश उस व्यक्ति के पक्ष में किया जा सकता है जिसे अपराध द्वारा हानि या शर्त हुई है। धारा के उस भाग में, जो वहां लागू होता है जहां जुर्माना अधिरोपित किया जाता है, यह विनिर्दिष्ट रूप में कहा गया है कि हानि या शर्त ऐसी ही जिसमें किसी सिविल वाद में प्रतिकर वसूलनीय होगा। जहां जुर्माना अधिरोपित नहीं किया जाता है वहां यह अपेक्षा अभिव्यक्त रूप से नहीं कायित की गई है। किन्तु “की” शब्द अपने आप में यह सुझाव देता है कि यह अनुयोज्य दावा होना चाहिए। [भारतीय दंड संहिता की धारा 43 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(ज) देखें] संक्षेप में संहिता की धारा 357 दांडिक न्यायालयों की धारा में अधिकांशत शीमाओं के भीतर सिविल न्यायालय के रूप में भी कृत्य करने के लिए सशक्त भारती है।

3. 28 भारतीय साक्ष्य अधिनियम : साधारण संबोधण

साक्ष्य अधिनियम निम्नलिखित प्रमुख विषयों के संबंध में कायित करता है :-

- (क) वे स्थिय जिनके बारे में साक्ष्य दिया जा सकता है;
- (ख) उस साक्ष्य का प्रकार, जो ऐसे तथ्यों के बारे में दिया जा सकता है;
- (ग) सबूत का भार और वे अपदाणाएं जो निकाली जा सकती हैं;
- (घ) साक्षियों की परीक्षा की पद्धति, और सार के बारे में अनुज्ञे सीमाएं तथा उनसे पूछे जाने वाले प्रश्नों का प्रहृष्ट, और
- (ङ) इन सभी विषयों की बाबत न्यायाधीश की भूमिका।

इस रिपोर्ट में, हमारा संबंध मुख्यतः ऊपर प्रवर्ग (क) और प्रवर्ग (घ) में आने वाले कठिपथ भास्त्वों से है। प्रवर्ग (क) के अधीन संस्वीकृति के बारे में कार्रवाई करना आवश्यक होगा जब कि प्रवर्ग (घ) के अधीन आत्म-अभिशंसन के विरुद्ध प्रमुखिया के संबंध में कार्रवाई करना आवश्यक होगा।

3. 29 साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 से 27 तक

संस्वीकृतियों का विषय, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के प्रतिपादन में व्यापक महत्व का है क्योंकि प्राप्त ऐसा पाया गया है कि कोई संस्वीकृति उपाय करने की प्रवृत्ति, विधि प्रवर्तन अधिकारियों को अनुचित साधनों का अवलंबन लेने के लिए प्रेरित वारती है। संस्वीकृति से संबंधित साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों का तब तक पूरी तरह मूल्यांकन नहीं किया जा सकता जब तक कि व्यक्ति उस स्थिति को अपने भानस नेवों के समक्ष नहीं रखता जिसमें वे अधिनियम में प्रतीत होते हैं। इस निम्नता अधिनियम की स्कीम का विवरण निम्नवत् किया जा सकता है :-

- (क) किसी कायिवाही में किसी पक्षवार द्वारा किया गया “कथन स्वीकृति” (धारा 17) है और यह साक्ष्य में अनुज्ञे है।
- (ख) स्वीकृति, भूल है; संस्वीकृति उसकी एक प्रजाति है, और इसीलिए अनुज्ञे है।
- (ग) किर भी, नूँकि संस्वीकृति (सामान्य स्वीकृति से यथा सुभिन्न) का परिणाम, किसी दंड का अधिरोपण हो सकता है अतः विधि में उनकी अनुज्ञेयता निर्वैधित करते हुए कठिपथ विशेष उपबंध अधिनियमित किए गए हैं। एक ऐसा निर्वैधन, स्वैच्छा से संबंधित है। यदि कोई संस्वीकृति स्वैच्छिक नहीं है तो वह अनुज्ञे नहीं होगी (धारा 24)।
- (घ) कठिपथ विशेष स्थितियों में, विधि इस सीमा तक भी अनुमान लगाती है कि स्थिति के दबावों को ध्यान में रखते हुए, संस्वीकृति, स्वैच्छिक नहीं हो सकती है अतः इन्हें साक्ष्य से पूर्णतः बाहर रखते हुए विशेष “अपवर्जनीय” उपबंध अधिनियमित किए गए हैं। एक ऐसा उपबंध, धारा 25 में अंतर्विष्ट है जिसमें यह उपबंध है कि किसी पुलिस अफिसर से की गई कोई संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध दावा की जाएगी। ऐसी संस्वीकृति का कभी भी अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराने के लिए अधिकांशी भाक्ष्य के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

अन्य अपवर्जनकारी उपबंध, साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 में, अंतर्विष्ट है जिसके अधीन कोई भी संस्वीकृति जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो जब वह पुलिस अफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विशद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो। दृढ़ प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 की ओर पहले ही निर्देश कर दिया गया है जिसके अधीन मजिस्ट्रेट कोई संस्वीकृति अभिलिखित कर सकता है।

- (इ) अंततः, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 (जो विलक्षणतः परन्तु शब्द से आरंभ होती है) में यह अधिकारियत है कि जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि विसी अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस अफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणाम-स्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतना चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतः संबंधित है, सुसंगत है। यह धारा के बलं धारा 27, या पूर्ववर्ती अन्य धारा या धाराओं पर अद्यारोही प्रभाव रखती है या नहीं, एक प्रश्न है हमें उस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आवहारिक प्रयोजनों के लिए जिसका संबंध है, वह यह है कि यदि "जानकारी" दी जाती है और उससे किसी तथ्य का "पता चलता" है (यह तथ्य सुसंगत होना, चाहिए धर्यापि धारा में स्पष्टतः ऐसा नहीं कहा गया है) तो जानकारी, साक्ष्य में ग्राह्य हो सकती है—
- भले ही व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में हो, और
 - इस तथ्य के होते हुए भी कि वह संस्वीकृति है।

जहां तक कि धारा 27 अभिरक्षा में किसी व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृतियों से संबंधित अपवर्जनकारी नियमों पर अधिभावी हैं वह पुलिस को एक संशक्त आदुध प्रदान कर देती है। इस धारा पर विशाल निर्णय विधि का भण्डार यह दर्शनों के लिए पर्याप्त है कि पुलिस द्वारा बल और प्रपीड़न का प्रयोग करके संस्वीकृतियां निकालने के लिए यह दर्शनों का पूरी स्तरह उपयोग किया गया है। और यदि कोई अंतर्निहित भाव को पढ़ पाने में समर्थ ही सके तो निर्णय विधि यह आशंका भी प्रक्षिप्त करती है कि पुलिस में ऐसी जानकारी उपापत्त करने के लिए जो धारा 27 की औपचारिक अपेक्षाओं का समाधान करती है, ऐसे साधनों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति है जो पूर्णतः विधिसम्मत नहीं है, भले ही ऐसी जानकारी का दिया जाना अभियुक्त व्यक्ति की इच्छाशक्ति के प्रयोग से न हो। यहीं वह कारण है जिससे हमें जब हम अपनी सिफारियों देंगे तब इस धारा पर फिर लौटना होगा।¹

1. रिपोर्ट के अध्याय 11 का पैरा 11.6 देखिए।

अध्याय 4

अंतर्राष्ट्रीय प्रसविदाएं

4. 1 जीवन का अधिकार

मानव अधिकारों से संबंधित अधिकार अंतर्राष्ट्रीय लिखितों में जीवन का अधिकार सुरक्षित रखा गया है। इन लिखितों में जीवन के अधिकार के संरक्षण के लिए साधारण खंड में यह घोषणा की गई है कि प्रत्येक मानव प्राणी की जीवन में निहित हृदयारी है जिस अधिकार का विधि द्वारा संरक्षण करने का सरकारे बचन देती है।^{1, 2}

4. 2 सकारात्मक और नकारात्मक पहलू

जहां तक अंतर्राष्ट्रीय प्रसविदाओं का संबंध है, वे राज्य पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के दायित्व अधिरोपित करती प्रतीत होती है। अपने सकारात्मक पहलू में, वे प्रसविदाएं राज्य और उसके अभिकरणों से जीवन के अधिकार का अतिक्रमण न करने की अोक्ता करती हैं। यह ऐसे अधिकार का सम्मान करने की बाध्यता में अन्तर्निहित है। उनके नकारात्मक पहलू में, राज्य को कम से कम ऐसे उचित कदम उठाने चाहिए जो प्रसविदा द्वारा प्रदत्त अधिकार का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। सिविल और राजनीतिक अधिकारों से संबंधित प्रसविदा के विषय में, प्रसविदा के अधीन स्थापित भानव अधिकार समिति, यह दृष्टिकोण अपनाए हुए प्रतीत होती है कि प्रसविदा के अधीन विधियाँ जीवन का बाध्यता एं सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों विभागों सम्बिल्प कर लेती हैं।³

4. 3 संयुक्त राष्ट्र घोषणा

संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा ने 9 दिसंबर, 1975 को थातना और अभानीय या अपनान-जनक व्यवहार वा दंड से व्यक्तियों के संरक्षण के लिए घोषणा अंगीकार की थी। घोषणा का अनुच्छेद 5, विधि प्रवर्तन अधिकारियों की यातना के लिए विशद्ध सवत् प्रशिक्षण की अपेक्षा करता है। अनुच्छेद 7, पूछताछ पद्धति और प्रयोगों, साह ही साथ अभिरक्षात्मक इन्तजामों के पुनर्विलोक्य की प्रणाली को ध्यान में रखता है। अनुच्छेद 9 राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिए वाध्य करता है कि राष्ट्रीय दंडिक विधि के अधीन यातना के क्रृत्य, अपराध बनाए जाएं। घोषणा यहीं भी उपबंध करती है कि शिकार व्यक्तियों को प्रतिरोध और प्रतिकर दिया जाएगा।

4. 4 आरक्षण संहिता

दिसंबर, 1979 में संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा द्वारा विधि प्रबल्लन अधिकारियों के लिए आचरण संहिता अंगीकार की गई थी। संहिता का अनुच्छेद 5, विधि प्रबल्लन अधिकारियों को थातना के लिए किसी

- सिविल और राजनीतिक अधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसविदा का अनुच्छेद 6(1) (संयुक्त राष्ट्र, 1966) मूल पाठ लैन ब्राउनली (संस्करण) में, वेसिक डाक्युमेंट्स आन ह्यूमन राइट्स (ओ० य० प००, 1985) पृष्ठ 128।
- ह्यूमन राइट्स एंड फंडमेंटल फाइंडमेंट पर यूरोपीय अभिसमय का अनुच्छेद 2(1) (काउन्सिल और यूरोप, 1950)। मूल पाठ लैन ब्राउनली (संस्करण) में, वेसिक डाक्युमेंट्स आन ह्यूमन राइट्स (ओ० य० प००, 1985) पृष्ठ 242।
- अमेरिकन काउनेंसन आफ ह्यूमन राइट्स का अनुच्छेद 4(1) (आर्गाइजेशन आफ अमेरिकन राइट्स, 1969) मूल पाठ, लैन ब्राउनली (संस्करण) में, वेसिक डाक्युमेंट्स आफ ह्यूमन राइट्स (ओ० य० प००, 1988) पृष्ठ 391।
- अफ्रीकन चार्टर आन ह्यूमन एंड प्रोपर्टी राइट्स का अनुच्छेद 4 (आर्गाइजेशन आफ अफ्रीकन यूनिटी, 1981) मूल पाठ के गियेर एंड डब्ल्यू बेन डेक (संस्करण) में। न्यू पर्सेप्रिट्व्स एंड कार्सेप्शन्स आफ इंटरनेशनल ला:एन एफ० पर्सेप्रिट्व्स डायलाग, (सिगर-वर-डियग, नियांग) पृष्ठ 247।
- देखिए डेनियल मांग्रवा बेंगो बनाम जैरी, पत्र सं० 16/1977, महासभा को ह्यूमन राइट्स कमेटी की रिपोर्ट, पृ० एन० डाक्युमेंट्स नं० ए/३८/४० (1963) पृष्ठ 134।
वेंडो वेलो कोनार्म बनाम कोलम्बिया, पत्र सं० ७८/३७/४० (1982), पृष्ठ 137। देखिए अमेलिस फेरेल बनाम युनाइटेड किंगडम, यूरोपियन कार्बेशन आन ह्यूमन राइट्स के बाल्यम २५, पार्क बीक० अफ्रीकेशन नं० ००१३/३०, पृष्ठ 124।

कृत्य किए जाने, उक्साने या उसे सहन करने से प्रतिषिद्ध करता है। यातना के शिकार व्यक्तियों से संबंधित संयुक्त राष्ट्र स्वैच्छिक निधि, 1981, ऐसे व्यक्तियों की जिन्हें यातना दी गई हो और उनके कुटुंबों के सदस्य को मानवीय, विधिक तथा वित्तीय सहाय्य के रूप में, सहायता के स्थापित चैनलों के आधार से वितरण के लिए स्वैच्छिक अभिवाय प्राप्त करने के लिए 16 दिसंबर, 1981 के साधारण सभा संकल्प 36/151 के अनुसरण में गठित की गई थी।

4. 6 यातना और अन्य कूरतापूर्ण, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राज्य अधिसमय, 1984

यातना और अन्य कूरतापूर्ण, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राज्य अधिसमय, 1984 धारीख 26 जून, 1987 से प्रवृत्त हुआ था। अधिसमय में कुल 33 अनुच्छेद हैं जो 3 भागों में विभाजित हैं। अधिसमय का धारा 1 यातना की परिभाषा करता है, यातना के कृत्यों और सहबद्ध संकल्पनाओं का प्रतिवेद्य करता है और अधिसमय के राज्य पक्षकारों की यह सुनिश्चित करने के लिए आबद्ध करता है कि यातना के सभी कृत्य दिइत किए जाएं। भाग 2 में उपर्युक्त प्रतिवेद्य के प्रवर्तन के लिए तंत्र का उपबंध है। भाग 3 अधिकारिक व्यक्तियों के संबंध में है।

4. 6 यातना की परिभाषा

यातना के विरुद्ध अधिसमय (1984) में "यातना" पद से ऐसे किसी, कृत्य के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति पर ऐसे प्रयोजनों के लिए जैसे उससे या किसी इतर व्यक्ति से किसी ऐसे कृत्य के लिए उसको, जो उसने या किसी इतर व्यक्ति ने किया है या करने के लिए संविदा है दिइत करने के लिए सूचना या संतर्चीकृति अभिप्राप्त करने, या उसको या इतर व्यक्ति को अभिदरत या प्रपीड़ित करने या किसी प्रकार के विशेषाकरण के आधार पर किसी कृत्य के लिए साथ तीव्र पीड़ा या यातना अधिरोपित की जाती है, जब ऐसी पीड़ा या यातना किसी लोक अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी शासकीय हैसियत में या उसकी उत्तमाहृष्ट पर या उसकी सहमति या उपमति से अधिरोपित की जाती है, किन्तु इसमें विधिपूर्ण मंजूरी में अंतर्भूत या उसके आनुषंगिक कार्य से ही उद्भूत होने वाली पीड़ा या यातना सम्मिलित नहीं है (अनुच्छेद 1)।

4. 7 उपाय

यातना के विरुद्ध संयुक्त राज्य अधिसमय (1984) का अनुच्छेद 2, अधिसमय के राज्य पक्षकारों के लिए उनकी अधिकारिता के भीतर किसी राज्यक्षेत्र में यातना के निवारण के लिए प्रभावी विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक या अन्य उपाय करना आवश्यक बनाता है। यातना के औचित्य के लिए, किसी भी आपवादिक परिस्थिति का, वह कोई भी क्यों न हो चाहे युद्ध की स्थिति हो या युद्ध की आशंका, अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अस्थिरता या कोई अन्य लोक-प्रशासन आपात; अवलंब नहीं लिया जा सकता है। किसी ज्येष्ठ अधिकारी या लोक प्राधिकारी के आदेश का, यातना के लिए औचित्य के रूप में, अवलंब नहीं लिया जा सकता है। अनुच्छेद 4 निम्नलिखित है:—

"अनुच्छेद 4. 1 प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि यातना के सभी कृत्य उसकी दाइडिक विधि के अधीन अपराध हैं। यहीं बात, यातना देने के प्रयास को और किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे कृत्य को, जो यातना में सह अपराधिता या आगे दारी गठित करता है, भी लागू होगी। प्रत्येक राज्य पक्षकार इन अपराधों को समृद्धि शास्त्रियों द्वारा जितने में उनकी गम्भीर प्रकृति को ध्यान में रखा जाएगा, दण्डनीय बनाया जाएगा।"

4. 8 शिक्षा, आदि

अधिसमय के अनुच्छेद 10 में प्रत्येक राज्य पक्षकार से यह भी सुनिश्चित करने की अपेक्षा की गई है कि यातना के विरुद्ध प्रतिवेद्य की बाबत शिक्षा और सूचना विधि प्रवर्तन कार्मिक, सिविल या सैनिक चिकित्सीय कार्मिक लोक अधिकारियों और अन्य ऐसे व्यक्तियों के प्रशिक्षण में पूरी तरह सम्मिलित हो, जो किसी प्रकार की गिरफ्तारी, निरोध या कारावास के अधीनियम किसी व्यष्टि को अधिरक्षा, पूछताला या व्यवहार में अन्तर्गत हों।

4. 9 नियमों का पुनर्विलोकन

संयुक्त राष्ट्र अधिसमय (1984) के अनुच्छेद 11 में यह उपबंध है कि प्रत्येक राज्य पक्षकार, यातना के किसी भागले के निवारण की दृष्टि से, अपनी अधिकारिता के अधीन किसी राज्यक्षेत्र में, गिरपतारी, निरोध या कारावास के किसी रूप के अधीनियम व्यक्तियों की अधिरक्षा और व्यवहार के लिए इत्याम साथ ही साथ नियमों, अनुदेशों, पद्धतियों और प्रथाओं को सुव्यवस्थित पुनर्विलोकन के अधीन रखेगा।

4. 10 कूरता के अन्य कृत्य

संयुक्त राष्ट्र अधिसमय, (1984) के अनुच्छेद 16 में यह उपबंध है कि प्रत्येक राज्य पक्षकार अपनी अधिकारिता के अधीन किसी राज्यक्षेत्र में, कूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अन्य कृत्यों के अनुच्छेद 1 में यथा परिभाषित यातना के तुल्य नहीं हैं, जब ऐसे कृत्य, किसी लोक अधिकारी या अन्य पर्याय हैसियत में कार्य कर रहे अन्य व्यक्ति की मौन सम्मिलित के परिणाम हों, निवारण का बचनबंध करेगा। विशिष्ट अनुच्छेद 10, 11, 12 और 13 में अन्तर्विष्ट वाध्यताएं, कूरता, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार या दंड के अन्य रूपों के प्रतिनिर्देशों के (यातना के प्रतिनिर्देशों के लिए) प्रतिस्थापन के साथ लागू होंगी।

4. 11 शिकार व्यक्ति

संयुक्त राष्ट्र के 29 नवम्बर, 1985 को अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक संकल्प अंगीकार किया था। संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए न्याय के आधार भूत सिद्धान्त सम्बन्धी धीरण का कैरकस रिजोल्यूशन अंगीकार किया था। इस वोणा में "अपराध के शिकार व्यक्ति" की परिभाषा दी गई है और सदस्य राज्यों से ऐसा न्यायिक और प्रशासनिक तन्त्र स्थापित करने की अपेक्षा की गई है जिससे शिकार व्यक्ति, ऐसी औपचारिक और अनौपचारिक प्रक्रियाओं में प्रतिलिपि अभिप्राप्त करने में समर्थ हो सके जो शीघ्र, न्यायसम्मत, भित्त्यादीय और पहुंच योग्य हों। धीरण आगे सदस्य राज्यों के लिए, अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के प्रत्यास्थापन तथा प्रतिवार के संदाय का उपबंध करने वाली विधियां बनाना, आवश्यक करती हैं। 1985 की धीरण का अनुच्छेद 12 सदस्य राज्यों को आबद्ध करता है कि वे अपराध के शिकार व्यक्तियों की वित्तीय प्रतिवार का उपबंध करें। अनुच्छेद 19, राज्यों से यह अपेक्षा करता है कि वे शिकार का दुरुपयोग विहित करने वाले और ऐसे दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए उपचारों का उपबंध करने वाले मानदण्डों को, अपनी राष्ट्रीय विधियों में निर्गमित करें। ऐसे उपचारों में प्रत्यास्थापन और प्रतिकर तथा आवश्यक सामग्री चिकित्सीय, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक समर्थन शामिल होना चाहिए।

4. 12 भारत की बाध्यताएं

भारत, पूर्वोक्त धीरणों का एक पक्षकार है। अतः वह उन्हें कार्यान्वयित करने के लिए प्रभावी कदम उठाने के लिए बाध्यता के अधीन है। संयुक्त राष्ट्र के समक्ष विचार विभाग में भारत के प्रतिनिधि ने भारत सरकार द्वारा उसके नागरिकों की ओर से एक अभिवंधन किया और इन नागरिकों के लिए एक गारंटी दी जिसका वे, जब कभी उनके अधिकारों की आशंका है, दावा कर सकते थे।¹

4. 13. भारत में, "अंतरराष्ट्रीय विधि और संधियों तथा बाध्यताओं के प्रति सम्मान अभिवंधन का लोगों का संकल्प" संविधान के अनुच्छेद 51 में प्रतिविवित है। बास्तव में, संसद ने विभिन्न धीरणों और अभिलम्बणों में यथा अंतर्विष्ट अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को प्रभावी बनाने के लिए विधियां अधिनियमित की हैं, इसके अंतरिक्ष, न्यायालयों में भी, अपने न्यायिक नवाचारों द्वारा, उन मानदण्डों का प्रभावी कार्यव्ययन सुनिश्चित किया था, जहां राज्य या उसके अधिकारण अंतरराष्ट्रीय मानदण्डों को कार्यान्वयित करने में असफल हुए हैं, और राज्य ने उन मानदण्डों का अनुसमर्थन किया है या उन्हें अंगीकार किया है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने, विधि के माध्यम से उन मानदण्डों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए निदेश जारी करके

1. नाइजेर द्वेष्ट द्वीपमें और ब्रिजनसं लंडर इंडियनेशनल ला" (यूनेस्को पैरिस कलरेंडरन प्रेस आक्सफोर्ड, 1987) पृष्ठ 59।

अधिकैप किया है। और, न्यायालय ने स्वदेशी विधि का इस प्रकार निर्वचन किया है जिससे कि अंतरराष्ट्रीय मानदण्डों का कार्यान्वयन प्रभावी किया जा सके। हम इस विषय पर सभी निर्णयों को निर्देशित करना आवश्यक नहीं समझते हैं, किन्तु उनमें से कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों को निर्देशित करना उचित होगा।

4. 1.4 निर्णय विधि

फांसिस कोरले मूलिन बनाम प्रशासक, संघ राज्यक्षेत्र, दिल्ली¹ के दाम्पत्य में, उच्चतम न्यायालय ने, संविधान के अनुच्छेद, 21 का निर्वचन करते समय, जब यह संप्रेषण किया तो अंतरराष्ट्रीय मानदण्डों को सम्मुख भान्नवा प्रदान की:

“—किसी प्रकार की यातना या कूरता, अभान्नवीय या अपमान जनक व्यवहार मानव गरिमा के प्रति क्लोशकर होगा और जीवन के इस अधिकार में अंतर्वेश गठित करेगा और इस दृष्टि से वह तब तक अनुच्छेद 21 द्वारा प्रतिष्ठित होगा जब तक कि वह विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार न हो, किंतु कोई ऐसी विधि और विधि द्वारा विहित कोई ऐसी प्रक्रिया, जो ऐसी यातना या कूरता, अभान्नवीय या अपमानजनक व्यवहार को प्राधिकृत करती है या उस और ले जाती है, युक्तियुक्ता और गैर अनभानेषण के परीक्षण में ठहर नहीं जाएगी। यह सीधे तौर पर अवंवेद्यानिक या अनुच्छेद 14 और 21 की अतिक्रमणकारी होने के कारण शून्य होगी। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि अनुच्छेद 21 में, यातना या कूरता, अभान्नवीय या अपमानजनक व्यवहार के विश्वद संरक्षण का अधिकार विवक्षित है जो मानव अधिकार की सांख्यिक घोषणा के अनुच्छेद 5 में प्रगणित है और सिविल तथा राजनीतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंदिदा के अनुच्छेद 7 द्वारा गारंटीकृत है।”

उच्चतम न्यायालय ने, चरण लाल साह बनाम भारत संघ² में संविधान के अनुच्छेद 21, 48क और 51(छ) का निर्वचन करते समय, निम्नवत् संप्रेषण किया:—

“मानव अधिकारों की हमारी राष्ट्रीय विभागों के परिप्रेक्ष्य में यीकून स्वातंत्र्य, प्रदूषणयुक्त वायु और जल का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21, 48क और 51(छ) के अधीन सारंटीकृत है। गारंटीकृत संवेद्यानिक अधिकारों का संरक्षण करने के लिए प्रशासी कादम उठाना राज्य का वर्तम्य है। ये अधिकार, हमारी संप्रभुता को ध्यान में रखकर, अंतरराष्ट्रीय विभागों और जनकों को तैयार करके संभेदित और प्रकाशित किया जाता है जैसे कि वे संवेद्यानिक नियमों संबंधी आचरण संहिता के खंड 9 और 13 द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं में उद्भूत मानकों का सम्मान किए जाने की आवश्यकता है। अपने लोगों की गरिमा और संप्रभुता बनाए रखने के लिए राज्य को विविध अधिनियमित करके नागरिकों के संवेद्यानिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रभावी प्रयास करना होगा।”

करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य के दाम्पत्य में, मानव अधिकार संबंधी अनुच्छेद 21 पर विचार करते समय, उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत् संप्रेषण किया:

“हम निरपवाद मानव अधिकारों का अपनी दीर्घकालीन विरासत के एक भागरूप में और अपनी संवेद्यानिक विधि में प्रतिष्ठित रूप में भी अनुसमर्थन करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम महसूस करते हैं कि इस साक्षेप महत्व को प्रत्येक विधि प्रवर्तन प्राधिकारी द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक है क्योंकि नागरिकों की जन्मजात गरिमा की और उनके सम्मान तथा अहस्तातरणीय अधिकारों की स्थानता, विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति की आधारशिला है। यदि मानव अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है तो न्यायालय को अपने तेजस्वी न्यायिक प्राधिकार का प्रयोग करके मानव अधिकारों के ऐसे अतिलंघन का मुकाबला करना चाहिए।”

यहां इन निर्णयों को दृष्टांत स्वरूप भाग यह दर्शित करने के लिए उद्दृष्टि किया गया है कि राष्ट्रीय विधि के प्रमेण पर कार्रवाई करते समय, अंतरराष्ट्रीय अभिसम्बन्धों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है।

1. फांसिस कोरल मूलिन बनाम प्रशासक विली संघ राज्यक्षेत्र (1981) एम० सी० सी० 608, 619।

2. चरण लाल साह बनाम सरकार संघ (1990) एम० सी० सी० 613, 713।

5. 1 भूमिका

गिरफ्तारी की विधि, जो पहले बहुत साधारण विषय के रूप में मानी जाती थी, विभिन्न कारणों से कठिन और कठीनी साबित हुई है। संपूर्ण विश्व में गत आधी शताब्दी के दौरान हुई राजनीतिक घटनाओं ने, गिरफ्तारी की विधि के सूचीकरण में और विधि के प्रशासन में कानूनी तिथियों के प्रेक्षण की आवश्यकता पर अधिक जोर बढ़ा दिया है। इस विषय पर अंतरराष्ट्रीय प्रसविदाएं और मानव अधिकारों के क्षेत्र में हुए विकास, किसी को भी यांत्र बैठने और यह दृष्टिकोण अपना नक्की अनुज्ञा नहीं देते हैं कि गिरफ्तारी की विधि के संरचन में हर बात ठीक है। इसके साथ जुड़ी हुई यह आशंका भी है कि विभिन्न देशों द्वारा व्यक्त की गई है कि कुछ मौकों पर, गिरफ्तारियां, विना युक्तियुक्त कारण के की जाती हैं, या वे विधि के आशय के प्रतिकूल रीति से की जा रही हैं। भारत में (जैसा कि अन्य देशों में है) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय किसी व्यक्ति के निजी स्वातंत्र्य से बंचित किए जाने के विश्वद संवेद्यानिक आदेश, इस विषय की परिचर्चा के सौदांतिक और व्यावहारिक महत्व की सहजत बढ़ा देता है। इसके अतिरिक्त नागरिक के संजोए गए निजी स्वातंत्र्य के साथ गिरफ्तारी की संकल्पना और उसकी प्रक्रिया का व्यापक तथा अनिवार्य संबंध सुस्पष्टतः इसे विवेक शील विधि प्रदाता और साथ ही न्यायाधीश के लिए निजी उद्दिनता और चिन्ता का विषय बना देता है।

5. 2 गिरफ्तारी की संकल्पना

बोलबाल में, कोई भी व्यक्ति, “गिरफ्तारी” शब्द द्वारा निजी स्वातंत्र्य का बंचन समझता है और हम इसका अर्थ यह समझते हैं कि जब किसी व्यक्ति को आवागमन की स्वतंत्रता, उसे गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति की इच्छा पर परिसीमित हो जाती है तब यह गिरफ्तार होता है। लैटिन शब्द ईस्टरे का अर्थ या पीछे खड़े होना, पीछे की ओर बने रहना या “सकना” (यही अपेजी शब्द “रेस्ट” का अवशेष के अर्थ में मूल भौत है)। पश्च-साहित्य काल में उपर्याएँ और रेस्टर्स से बनाई गई वैज्ञानिक क्रिया “अरेस्टर” का एक कारण परक कृत्य था: “पीछे की ओर बने रहना”, या “सकना”, “कारित करना”, इसलिए “पकड़ना”, “अभिमूहीत करना” अर्थ हुआ। ये अर्थ प्राचीन फ्रेंच से होकर अपेजी में आए थे। (ब्लूम्स बरी डिक्षनरी आफ वर्ड ऑर्गेजन्स, 1992, प० 38)

5. 3. गिरफ्तारी के संबंध में विधिक उपबन्ध

कानून द्वारा किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति, विभिन्न स्थितियों में प्रदत्त की गई है। बर्तमान, प्रयोजन के लिए सर्वीसिक संगत उपबन्ध, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(1) में अंतर्विष्ट हैं जो यह उपबन्ध करती है कि कोई पुलिस अधिकारी किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है जो किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है, या जिसके विश्वद नागरिक के संजोए गए निजी स्वातंत्र्य के साथ गिरफ्तारी की संकल्पना और उसकी प्रक्रिया का व्यापक तथा अनिवार्य संबंध सुस्पष्टतः इसे विवेकशील विधि प्रदाता और साथ ही न्यायाधीश के लिए निजी उद्दिनता और चिन्ता का विषय बना देता है।

इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है या विश्वसनीय इतिला प्राप्त हो चुकी है या उचित सदैव विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है। धारा का पहला भाग, पूर्णतः वस्तुपरक है, व्यक्ति कोई व्यक्ति, किसी संज्ञेय में संबद्ध रह चुका है, तो पुलिस अधिकारी उसे गिरफ्तार कर सकता है। पहले भाग में जो मूल्य बात है वह संज्ञेय अपराध में संबद्ध रहने का तथ्य है। पुलिस अधिकारी के उस मामले में दृष्टिकोण का कोई परिणाम नहीं है। किन्तु धारा 41(1) के अवशेष भाग के संबंध में वस्तुपरक तथ्यों का व्यक्ति परक मूल्यांकन की कतिपय मात्रा के साथ संयोजन मिलता है। धारा 41(1) के इस भाग में वस्तुपरक तत्व, “उचित” या “विश्वसनीय” जैसे विशेषणों के प्रयोग की पुनरावृत्ति द्वारा प्रकाश में लाया गया है। किन्तु वस्तु परक रूप से यह स्थापित करना आवश्यक नहीं है कि गिरफ्तार किए जाने के लिए प्रस्थावित व्यक्ति किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है परिवाद की युक्तियुक्तता, या इतिला की विश्वसनीयता या संदेह की युक्तियुक्तता, पर्याप्त होगी, परवानि, ये तत्व ठीक मामलों में वादविवाद की विषय वस्तु हो सकेंगे।

3. 4. औपचारिक और अनौपचारिक गिरफतारी

इस बात पर पर्याप्त परिचर्चा होती रही है कि गिरफतारी कब होती है। यह एक ऐसी परिचर्चा है जो पुलिस अधिकारियों द्वारा “पृच्छा के लिए निरुद्ध करने” या “रोकने और उछलकूद करने” इत्यादि जैसी अपनाई गई प्रथाओं के कारण आवश्यक हो गई प्रतीत होती है। भलेश्या¹ से हुई एक अपील में, लाई डेवलिन ने स्थिति का कथन इस प्रकार किया है :

“गिरफतारी तब होती है जब पुलिस अधिकारी वस्तुतः यह कथन करता है कि वह गिरफतार कर रहा है। जब वह संबद्ध व्यक्ति को अवशुद्ध करने के लिए बल का प्रयोग करता है। यह तब भी होती है जब शब्दों या अचरण द्वारा वह यह स्पष्ट कर देता है कि वह, यदि आवश्यक हुआ तो, व्यक्ति को बहां जाने से, जहां वह जाना चाह सकता है, तिवारित करने के लिए बल का प्रयोग करेगा। यह तब नहीं होती है जब वह किसी व्यक्ति को पृच्छा के लिए रोकता है।”

एक अन्य भास्मले में² (हाउस आफ लाई स में) लाई डिपलाक ने अपना विचार, निम्नवत्त व्यक्त किया था :—

“गिरफतारी एक चालू रहने वाला कृत्य है, यह किसी व्यक्ति को गिरफतार करने या उसे अधिकारा (कार्य या शब्दों द्वारा), उसे गिरफतार करने वाले के नियंत्रण से परे कहीं भी आने-जाने से उसे निरुद्ध करके) में लेने से आरंभ होता है और तब तक बना रहता है जब तक कि इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति, या तो अधिकारा से निर्मुक्त नहीं हो जाता है, या किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाकर, मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्य द्वारा अधिकारा में पुनःप्रेषित नहीं किया जाता है।”

3. 5 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 की अपेक्षाएं

यह नोटिस किया गया होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41(1)(क) तीन वैकल्पिक स्थितियों में (गिरफतार किए जाने वाले व्यक्ति की किसी सज्जेय अपराध में संबंध होने की पूर्णतः वस्तुपूरक स्थिति होने के अतिरिक्त प्रवर्तन में) आती है :—

- इस प्रकार संबद्ध रहने का उचित परिवाद किया जा सकता है;
- इस प्रकार संबद्ध रहने की विश्वसनीय इतिलाप्राप्त हो सकती है;
- इस प्रकार संबद्ध रहने का उचित संदेह विद्यमान है।

व्यवहार में, पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई अधिकतर गिरफतारियां तीसरे प्रवर्ग के अधीन आती हैं। इस संबंध में, इस बात की ओर संकेत करना संबद्ध होता कि उचित संदेह का, न्यूनतम अपेक्षा के रूप में उल्लेख किया गया है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय³ के पूर्ण धीठ विनियशय के अनुसार, उचित संदेह, न्यूनतम अपेक्षा है। हम आगे उच्चतम न्यायालय के एक हाल के निर्णय⁴ को निर्देशित करेंगे जहां गिरफतारी की व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं का विशदीकरण किया गया है और कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं। यह स्पष्ट है कि “उचित” विशेषण एक वस्तुपूरक तत्व पुरुस्याप्रित करता है और यह कि किसी व्यक्ति को गिरफतार किए जाने के पूर्ण उचित संदेह की विद्यमानता आवश्यक है। चूंकि गिरफतारी किसी व्यक्ति के स्वातंत्र्य पर एक संभीर हस्तेष है, इसी लिए विधि ने किसी पुलिस अधिकारों को तभी गिरफतारी की अविक्ति का प्रयोग करने के लिए आदिष्ट किया है जब उचित संदेह के वस्तुपूरक तत्व की पूर्ति हो गई हो। तथापि, वास्तविक व्यवहार में, विधि की इस सम्मानजनक आज्ञा का अनुसरण नहीं किया गया है क्योंकि पुलिस द्वारा मात्र संदेह पर अविवेकपूर्ण गिरफतारियां की जा रही हैं।

3. 6 गिरफतारी की बाबत विवेक

इंगलैंड में, क्रिनिल ला ऐक्ट, 1967 की धारा 2(4) द्वारा गिरफतारी की कार्टेबल की व्यक्ति, इन शब्दों में अधिकथित की गई है :

- शब्दन विन हूसेन बनाम बोंग फुक काम, (1969) 3 आल ई० आर० 1626 (पी०सी) ।
- होलोट मोहम्मद बनाम इयूक (1984) आल ई० आर० 1054, 1056 (एच०एल) ।
- मुलाव चंब कन्वलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1982) एम०पी० एल०जे० 7, 17, (एक०बी) ।
- ओगिन्डर सिंह, पैरा 5, 7, इन्फरा ।

“जहां कोई कान्स्टेबल उचित कारण से यह संदेह करता है कि गिरफतारी थोस्य अपराध हुआ है, वहां वह बिना वारण्ट के किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके बहुत उचित कारण से दोषी होने का संदेह करता है, गिरफतार कर सकता है।”

इंगलैंड में कुछ समय पूर्व यह प्रश्न उठा था कि क्या कार्टेबल द्वारा ऐसा उचित संदेह हो जाने पर, गिरफतारी, आज्ञापक है। इस प्रश्न पर विचार करते समय हाउस आफ लाई स ने यह अभिनिर्वार्ता⁵ किया कि जब पुलिस को उचित संदेह हो गया हो कि किसी व्यक्ति ने कोई गिरफतारी थोस्य अपराध किया है, तब भी इसका अर्थ यह नहीं कि उसे अवश्य गिरफतार किया जाए। विवेकाधिकार का उचित रूप से प्रयोग किया जाना है और न्यायालय में उसके प्रयोग पर ऐसे सिद्धांतों के आधार पर प्रश्न नहीं किया जा सकता जिन्हें “बेन्सबरी रिचर्ट”⁶ के नाम से जाना जाता है।⁷ इन सिद्धांतों के अनुसार ऐसे व्यक्ति को, जिसे कानून द्वारा विवेकाधिकार प्रदत्त किया गया है, उसे —

- इसका प्रयोग सद्भावपूर्वक कानून के उद्देश्य को अप्रसर करने के लिए करना चाहिए ;
- कानून के मत्तत अथवाव्यत धर नहीं बढ़ना चाहिए ;
- विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए सुनिश्चित विषयों को गणना में लेना चाहिए ;
- असंगत विषय स प्रभावित नहीं होना चाहिए।

3. 7. उच्चतम न्यायालय का निर्णय

ओगिन्डर सिंह का भास्मला

गिरफतार करने के विवेक का विषय ओगिन्डर सिंह के भास्मले में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया, जो वर्तमान प्रयोजन के लिए अत्यधिक व्यावहारिक महत्व का है। उच्चतम न्यायालय ने उस भास्मले में पहले इस बात को नोट किया कि गिरफतारी की विधि एक और व्यक्ति के अधिकारों, स्वतंत्रताओं और विशेषाधिकारों तथा दूसरी और व्यापिक कर्तव्यों, आदि के बीच एक प्रकार का संतुलक है। व्यक्ति को, उस सामाजिक आवश्यकता के, कि अपराध का दमन किया जाएगा, विरुद्ध व्यक्ति के संरक्षण के लिए संतुलन करना है। इस बात का विशदीकरण करने के पश्चात और राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा उसकी तीसरी रिपोर्ट (पाठ 31 और 32) तथा दांडिक प्रक्रिया पर रायल कमीशन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर ध्यान देने के पश्चात भारत के उच्चतम न्यायालय ने पुलिस द्वारा गिरफतारी की बाबत कर्तिपय मार्गदर्शी सिद्धांतों का सुझाव दिया है। न्यायालय ने, दांडिक प्रक्रिया पर रायल कमीशन के निम्नलिखित सुझाव को भी निर्देशित किया है :

“गिरफतारी के उपयोग को घटाने में मदद करने के लिए हम यहां एक ऐसी स्कीम को प्रारम्भ करने का भी प्रस्ताव करना चाहेंगे जिसका प्रयोग ऑटारियो में एक ऐसी सूचना जारी करने में समर्थ बनाने के लिए किया जाता है जिसे हाजिरी सूचना कहते हैं। उस प्रक्रिया का प्रयोग, गिरफतारी को अपनाए बिना, पुलिस धरने पर हाजिरी अभिप्राप्त करने के लिए किया जा सकता है, परन्तु यह तब जब कि गिरफतारी की शक्ति विद्यमान हो, उदाहरण के लिए, अंगुलियाप लेने वा किसी दूसरी धरने पर हस्तेष है, उसके बाल लेने के लिए इसका विस्तार, संदिग्ध व्यक्ति और भास्मले का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी दोनों के लिए सुविधाजनक समय पर साक्षात्कार के लिए हाजिरी पर भी किया जा सकता है ———।”

उच्चतम न्यायालय ने, दि पिपुल्स एण्ड क्रिमीनल इवीडेंस ऐक्ट, 1984 (य० के०) की धारा 56(1) वी निर्दिष्ट की, जो निम्नवत् है :—

“जहां किसी व्यक्ति को घटाने में मदद करने के लिए हम यहां एक ऐसी स्कीम को प्रारम्भ करने का भी प्रस्ताव करना चाहेंगे जिसका प्रयोग ऑटारियो में एक ऐसी सूचना जारी करने में समर्थ बनाने के लिए किया जाता है जिसे हाजिरी सूचना कहते हैं। उस प्रक्रिया का प्रयोग, गिरफतारी को अपनाए बिना, पुलिस धरने पर हाजिरी अभिप्राप्त करने के लिए किया जा सकता है, परन्तु यह तब जब कि गिरफतारी की शक्ति विद्यमान हो, उदाहरण के लिए, अंगुलियाप लेने वा किसी दूसरी धरने पर हस्तेष है, उसके बाल लेने के लिए इसका विस्तार, संदिग्ध व्यक्ति और भास्मले का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी दोनों के लिए सुविधाजनक समय पर साक्षात्कार के लिए हाजिरी पर भी किया जा सकता है ———।”

- होलोट मोहम्मद बनाम इयूक (1984) 1 आल ई० आर० 1054, 1059, 1060 (एच०एल) ।
- एसोशिएटेड प्रार्विसियल पिक्चर हाउस लिं बनाम वेसबरी कार्पोरेशन (1947) 2 आल ई० आर० 680 (सी०ए०) ।
- ओगिन्डर सिंह, पैरा 5, 7, इन्फरा ।

शी घं, जो व्यवहार्य हो सिवाय उस सीमा तक विलंब के, जितनी हस्थारा-हारा अनुज्ञात है, यह बताने का हकदार होगा कि उसे गिरफ्तार किया गया है और वहां निरुद्ध रखा जा रहा है।"

5. 8. उच्चतम न्यायालय द्वारा लुकाए गए भार्गदर्शी सिद्धांत

जोगिन्दर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1944) 3 जे० टी० (एस० सी०) 423, 430 के मामले में जिसे हमने पूर्ववर्ती पैरा में निर्दिष्ट किया है, यह स्पष्ट करने का अध्यवसाय किया गया है कि गिरफ्तारी मात्र इस कारण से नहीं की जा सकती कि पुलिस अधिकारी के लिए ऐसा करना विधिपूर्ण है। शक्ति की विद्यमानता एक बात है, जब कि शक्ति का प्रयोग विलुप्त भिन्न बात है। पुलिस अधिकारी को, उसकी ऐसा करने की शक्ति के अलावा, गिरफ्तारी का अधिकारी का अधिकारी के लिए विशेष अप्रवान विधिपूर्ण है। गिरफ्तारी और निरोध किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और आत्माभिमान को अनुमय अप्रवान कारित कर सकते हैं। न्यायालय ने इस निमित्त निम्नलिखित संप्रेक्षण किए हैं:

"कोई गिरफ्तारी, किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध किए जाने के अधिकार मात्र पर नैतिक रीति से नहीं की जा सकती। पुलिस अधिकारी के लिए, किसी नागरिक के संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण के हित में और संभवतः उसके अपने हित में यह प्रब्रायुक्त होगा कि किसी परिवाद की बास्तविकता और सद्भाविकता की बाबत कुछ अनेकषण करने के पश्चात् किसी उचित समाधान पर पहुंचे बिना और व्यक्ति की जटिलता तथा गिरफ्तारी के प्रभाव की आवश्यकता, इन दोनों पर भी उचित विश्वास हुए बिना, कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से इंकार करना गंभीर विषय है। पुलिस आधोग की सिफारियों के बल निजी स्वातंत्र्य और स्वतंत्रता के मूल अधिकार की संवैधानिक प्रतिबद्धता को प्रकाश में लाती है। कोई व्यक्ति किसी अपराध में जटिलता के संदेह मात्र पर गिरफ्तारी के लिए दायी नहीं है। गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की राय में कुछ युक्तियुक्त औचित्य होना आवश्यक है कि ऐसी गिरफ्तारी आवश्यक और औचित्यपूर्ण है। जब्त्य अपराधों में के सिवाय, यदि पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को पुलिस थाने पर हाजिर होने और अनुज्ञा के बिना आता न छोड़ने के लिए सूचना जारी करे, तो गिरफ्तारी से बचा जा सकेगा।"

उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 26 में अपेक्षाएं निम्नवत् अधिकथित की है:

"ये अधिकार, संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 (1) में अंतिमिति हैं और इन्हें मान्यता देना तथा सतर्कतापूर्वक संरक्षित किया जाना अपेक्षित है। इन मूल अधिकारों के प्रभावी प्रबत्तन के लिए हम निम्नलिखित अपेक्षाएं जारी करते हैं:

1. अभिरक्षा में रखा जा रहा कोई गिरफ्तार किया गया व्यक्ति, यदि वह ऐसी प्रार्थना करता है तो अपने एक भिन्न, नातेदार या अन्य व्यक्ति को, जो उसका परिचित है या जिससे उसके कल्याण में रुचि लेने की संभावना है, जहां तक व्यवहार्य है, यह बताने का हकदार है कि वह, गिरफ्तार किया जा चुका है और उसे कहां पर निरुद्ध रखा जा रहा है।
2. पुलिस अधिकारी, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, जब उसे पुलिस थाने पर आधा जाता है, इस अधिकार की सूचना देगा।
3. डायरी में इस आधोग की प्रविष्टि की जानी अपेक्षित होगी कि गिरफ्तारी की सूचना किसको दी गई थी। शक्ति से ये संरक्षण, अनुच्छेद 21 और 22 (1) से निःसूत समझे जाएंगे।"

5. 9. मजिस्ट्रेट का कर्तव्य

इसी निर्णय (जोगिन्दर सिंह) के पैरा 27 में, उच्चतम न्यायालय ने निर्देश किया कि यह उस मजिस्ट्रेट का, जिसके समक्ष गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, पेश किया गया है, कर्तव्य होगा कि वह स्वयं समाधान कर ले कि पूर्ववर्ती पैरा में उपर्याप्त अपेक्षाएं पूरी कर दी गई हैं। निर्णय के पैरा 28 के अनुसार उपर्युक्त अपेक्षाओं का तब तक अनुसरण किया जाए जब तक कि इस निमित्त विधिक उपबंध नहीं कर दिए

जाते तथा यह और स्पष्ट किया गया था कि ये अपेक्षाएं विभिन्न पुलिस मैनुअलों में पाए जाने वाले गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के अधिकारों के अलावा हैं।

5. 10 गिरफ्तारी के लिए कारण

उच्चतम न्यायालय ने जोगिन्दर सिंह वाले सामले में, पैरा 29, यह स्पष्ट करते हुए कि ये अपेक्षाएं, संपूर्ण नहीं हैं, भारत में सभी राज्यों के पुलिस भविन्देशकों को, इन अपेक्षाओं के सम्बन्ध अनुपालन की अपेक्षा करते हुए आवश्यक निर्देशों को जारी करने का निर्देश दिया। "इसके अंतर्गत, विभागीय अनुदेश भी जारी किए जाने हैं कि कोई पुलिस अधिकारी कोई गिरफ्तारी करते समय ऐसी गिरफ्तारी करने के कारण भी केस डायरी में अभिलिखित करेगा।"

5. 11 शीला बासे के सामले में विर्यग

इस प्रक्रम पर, हम शीला बासे के सामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय¹ के प्रति भी निर्देश कर सकते हैं, जिसमें साधारणतः गिरफ्तारी और स्वियों की गिरफ्तारी, दोनों की बाबत विवरण भार्गदर्शी सिद्धांत अधिकथित किए गए थे। सुसंगत भार्गदर्शी सिद्धांत निम्नवर्ती हैं:—

- (1) उचित रूप से अच्छी संस्थितियों में चार या पांच पुलिस हवालातों वा चयन करना चाहिए और केवल वहीं पर संदिग्ध स्वियों को रखा जाना चाहिए तथा उनकी सुरक्षा भी स्वीकृतिहीनों द्वारा की जानी चाहिए।
- (2) संदिग्धों स्वियों को ऐसी हवालात में नहीं रखना चाहिए जहां पुरुष संदिग्ध निरुद्ध किए जाते हैं।
- (3) संदिग्ध स्वियों से पूछताछ, केवल स्वीकृत पुलिस अधिकारी सिपाहीयों की उपस्थिति में की जानी चाहिए।
- (4) जब कभी किसी संदिग्ध को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया और पुलिस हवालात में लाया जाता है तो पुलिस तत्काल तथ्य की जानकारी निकाटक विधिक सहायता समिति को देगी।
- (5) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उनकी शिकायत सुनने का अवसर देने और पुलिस हवालात में उनकी दशा सुनिश्चित करने की दृष्टि से नगर के भीतर पुलिस हवालातों का आवधिक रूप से अचानक निरीक्षण किया जाना चाहिए।
- (6) जैसे ही कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है, पुलिस को तत्काल उससे उसके किसी ऐसे नातेदार या मित्र का नाम अभिप्राप्त करना चाहिए, जिसको वह अपनी गिरफ्तारी के बारे में सूचित करना चाहे और पुलिस को ऐसे नातेदार या मित्र से संपर्क करना और उसे गिरफ्तारी के बारे में सूचित करना चाहिए।
- (7) वह मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष गिरफ्तार किया गया व्यक्ति पेश किया जाता है, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यह पूछेगा कि क्या उसे पुलिस अभिरक्षा में यातना या दुर्घटव्यार का कोई परिवाद है।

5. 12 काउन्सेल की उपस्थिति

पुलिस द्वारा जिसी अभियुक्त व्यक्ति से पूछताछ करने के समय, काउन्सेल की उपस्थिति के विषय पर अनेक देशों में और विशेष रूप से अभियुक्त से, यदि कोई है, उसकी उपस्थिति पर ध्यान दिया गया है:

".....हम यह अधिवक्तियों नहीं करते कि पुलिस को अधिवक्ता प्रणाली की सेवाएं प्राप्त करनी चाहिए, यह एक दुब्ब्रथा है जो अन्य वूराइयों को जन्म देती है। दिन्तु हमारा आशय भाल यह है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति, जब उसकी परीक्षा की जा रही हो तो तब अपने पास अपने बैकील के रहने की इच्छा व्यक्त करता है तो इस सुविधा से, किसी ऐसी गंभीर निन्दा के प्रकार हुए बिना कि गोपनीयता में अस्वैच्छिक आत्मापरग्राह प्राप्त किया जाता है और इच्छा वा प्रपीड़न करना ही उद्देश्य या इकार नहीं किया जाएगा....."

1. शीला बासे बनाम भारत राज्य, १० अगस्त १९८३ एस सी ३७८.

2. नन्दिनी सत्यां बनाम विहार राज्य १९७८ क्र०ल००४० ९६८.

यह प्रतीत होगी कि यदि कोई अद्यधिक विस्तृत रूप से संवैधानिक पक्षों की जांच करना चाहे, तो संविधान के काम से काम 3 अनुच्छेद अधीत् अनुच्छेद 20, 21 और 22 इससे संगत होंगे। यदि संवैधानिकेतर पक्ष को ही गणना में लिया जाए तो यह प्रतीत होगा कि यदि पूछताछ के दौरान या सहबद्ध व्यवहारों के दुष्प्रयोगों को रोकने के लिए गंभीर प्रयास किया जाता है तो गिरफ्तार व्यक्ति की यह सांग करने का हकदार बनाने के लिए काम यह उपबंध हीना चाहिए कि पूछताछ उसके नुसाब के काउन्सेल या किसी कुटुम्ब-भित्र की उपस्थिति में की जानी चाहिए। इस प्रकार पर राज्य द्वारा नियुक्त किए गए काउन्सेल की उपस्थिति की अपेक्षा अतः स्थापित करने की ज़रूरत नहीं है किन्तु जैसा कि हरने पूर्वती वाक्य में कहा है, उसे विधि में समिलित किए जाने की ज़रूरत है। यहां हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि हमारी प्रश्नावली (काम सं० 2) की कुछ अनुक्रियाओं में काउन्सेल की उपस्थिति का पक्ष लिया गया है जब कि काफी बड़ी संख्या में (काम सं० 2) में विरोध किया गया है।

5.13 विधि आयोग की रिपोर्ट सं० 135

हम इस स्थल पर विनिविष्टतः इस बात का उल्लेख करना चाहेंगे कि भारत के विधि आयोग ने अभिरक्षा में द्विं संबंधी अपनी 135वीं रिपोर्ट में (1989) अभिरक्षा में स्त्रियों की उत्पीड़न से संरक्षा और संभाव्य सीमा तक उनके संरक्षण के लिए विस्तृत उपबंधों की सिफारिश की थी। आयोग ने, इस प्रधोजन के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता में एक विनिविष्ट और पृथक् अध्याय के अतः स्थापन की सिफारिश की थी ताकि संबंधित अधिकारी और कानूनी अभिरक्षा में स्त्रियों और उनके नातेदार, अधिक प्रयास किए बिना, ऐसी स्त्रियों के अधिकारों और विभिन्न अधिकारियों की बाध्यताओं का स्वयं पता लगा सकें और उनकी सूचना पा सकें। स्त्रियों की गिरफ्तारी उनसे पूछताछ और उनकी अभिरक्षा आदि से संबंधित प्रस्तावित पृथक् अध्याय का एक प्रारूप रिपोर्ट के साथ संलग्न था। वर्तमान प्रकार पर, केवल उन्हीं सिफारियों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा जो गिरफ्तारी और पूछताछ से संबंधित है। ये सिफारियों निम्नवत् हैं:-

- (1) किसी स्त्री का गिरफ्तार किया जाना अपेक्षित होने की दशा में संबद्ध पुलिस अधिकारी, बस्तुतः स्त्री के शरीर का स्पर्श नहीं करेगा और अभिरक्षा में उसके हो जाने की उपधारणा करेगा। यह सिफारिश इस लिए की जा रही है कि संबद्ध स्त्री की भरिमा बनी रहे।
- (2) सामान्यतः किसी स्त्री को सूर्योदय के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व गिरफ्तार नहीं किया जाएगा। आपवादिक मामलों में इन घंटों के दौरान गिरफ्तारी के लिए—
 - (i) अव्यवहित वरिष्ठ अधिकारी की पूर्व अनुज्ञा अभिप्राप्त की जाएगी, या
 - (ii) यदि मामला अत्यंत आवश्यकता का है तो, गिरफ्तारी के पश्चात्, सकारण रिपोर्ट अव्यवहित वरिष्ठ अधिकारी को और मर्फिट्रेट को की जाएगी।
- (3) यहां कहीं किसी स्त्री की चिकित्सीय रूप से परीक्षा की जाती है, वहां किसी महिला चिकित्सा व्यवसायी के पर्यवेक्षण के अधीन शारीरिकता को कठोरता पूर्वक ध्यान में रखकर कराई जाएगी।
- (4) संबद्ध स्त्री को “अभिलेख पर कोई ऐसे तथ्य लाने के लिए जिनसे यह पता चल सके कि गिरफ्तारी के पश्चात् उसके विरुद्ध कोई अपराध किया गया है” चिकित्सीय रूप से परीक्षा करवाने के उसके अधिकार के द्वारे में सूचित किया जाएगा।
- (5) चिकित्सीय परीक्षा की रिपोर्ट की एक प्रति उस स्त्री को दी जाएगी।
- (6) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन किसी स्त्री से, उसके निवास गृह से भिन्न किसी स्थल पर पूछताछ के लिए हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी और संहिता की धारा 160 का इस प्रयोजन के लिए संयोग्यन किया जाना चाहिए।
- (7) जब किसी स्त्री का बयान अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किया जाता है, तब उस स्त्री का कोई नातेदार या भिन्न या स्त्रियों के कल्याण में हितबद्ध किसी संस्था के प्राधिकृत प्रतिनिधि को उपस्थित बने रहने की अनुमति दी जाएगी।

5.14 न्यायिक अधिकारी

इस प्रकार पर उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय¹ वा उल्लेख करना उचित होगा जिसमें पुलिस अधिकारियों या न्यायिक अधिकारियों द्वारा अनुसरण किए जाने के लिए करिताम भारी दर्शायी जिम्मेदारी निम्नवत् है:-

- (क) यदि किसी न्यायिक अधिकारी को किसी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाना है तो ऐसा, यथास्थिति, जिला न्यायाधीश, या उच्च न्यायालय को सूचना के अधीन किया जाना चाहिए।
- (ख) यदि तथ्य और परिस्थितियां, अधीनस्थ न्यायपालिका के किसी न्यायिक अधिकारी की तात्कालिक गिरफ्तारी आवश्यक बना देती है तो तकनीकी या औपचारिक गिरफ्तारी, की जा सकेगी।
- (ग) ऐसी गिरफ्तारी के तथ्य तत्वाल संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश, तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को संसूचित किए जाएंगे।
- (घ) इस प्रकार गिरफ्तार किए गए न्यायिक अधिकारी को संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश के, यदि उपलब्ध है, पूर्व आदेश या निर्देशों के बिना, पुलिस याने नहीं ले जाया जाएगा।
- (इ) किसी न्यायिक अधिकारी को हथकड़ी नहीं लगाई जानी चाहिए। तथापि, यदि गिरफ्तारी वा हिसात्मक प्रतिरोध किया जाता है या यदि जीवन और अंगों के खरारे को को दूर करने के लिए शारीरिक गिरफ्तारी करने की आसानी आवश्यकता है तो प्रतिरोध करने वाले व्यक्ति को बश में किया और उसको हथकड़ी लगाई जा सकती है। ऐसे मामलों में, संबद्ध जिला और सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को भी तत्काल रिपोर्ट पेश की जाएगी। किन्तु न्यायिक अधिकारी की शारीरिक, गिरफ्तारी वाने और हथकड़ी लगाने की आवश्यकता साक्षित करने का भार पुलिस पर होगा, और यदि यह सिद्ध हो जाता है कि न्यायिक अधिकारी की शारीरिक गिरफ्तारी और उसको हथकड़ी लगाना और्कियपूर्ण नहीं या तो ऐसी गिरफ्तारी और हथकड़ी लगाने या उसके लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी, कदाचार के दोषी होंगे और ऐसे प्रतिकर और/या नुकसानी के लिए, जो उच्च न्यायालय द्वारा सारतः अवधारित की जाए, भी व्यक्तिगत रूप से दायी होंगे।

5.15 संसद् सदस्य

हम इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहेंगे कि संसद् सदस्यों (और राज्य विधायिकाओं के सदस्यों) की गिरफ्तारी का प्रश्न भी कुछ महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिषाटी यह है कि किसी दाइन्डक आरोप पर ऐसे सदस्य को गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी, तुरन्त उस विधायिका के पीठासीन अधिकारी को तार द्वारा, और डाक द्वारा भी सूचना देगा। जोगिन्द्र सिंह के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मानदंड का बठोरता पूर्वक पालन करने की आवश्यकता पर जोर दिया था:-

“तोक सभा में कारबार की प्रक्रिया और संचालन नियमावली के नियम 229 के अधीन जब कोई सदस्य, दांडिक आरोप पर गिरफ्तार किया जाता है या किसी वार्षिक आधिकारी को अथवा भजिस्ट्रे के आदेश के अधीन निरुद्ध रखा जाता है तब कार्यपालक प्राधिकारी को ऐसे तथ्य की सूचना बिना विलम्ब किए स्वीकार कर देनी चाहिए। जैसे ही कोई गिरफ्तारी, निरोध, दोषसिद्धि या निर्मित होती है, सूचना निरपवाद रूप से स्पीकर लोक सभा/राज्य सभा को भेजने के साथ-साथ संबद्ध सरकार को भेजी जानी चाहिए। यह सूचना, तार से और डाक द्वारा भी भेजी जानी चाहिए और सूचना देने में अवकाश, आदि के आधार पर विलंब नहीं किया जाना चाहिए।”

1. दिल्ली ज्युडिसियल सर्विस एसेसिंगेशन बनाम गुजरात राज्य (1991) 4 एस० सी० 406.

2. जोगिन्द्र सिंह बनाम पंजाब राज्य (1944) 3 जे टी (एस सी) 423, 430, 431.

5. 16 ज्यवनीया जाने वाला कारक—विधि में संशोधन

हमने उन विभिन्न उधायों पर, जो विशिष्टतः दृष्टि किया थे को रोकने के क्रम में, अपनाए जाने चाहिए, ध्यान केन्द्रित करने की दृष्टि से इस अध्याय में गिरफतारी से संबंधित महत्वपूर्ण तामग्री एक साथ संकलित करने का प्रयत्न किया है। हम यह जानते हैं कि विधान में सभी बातें रखना शक्य नहीं हो सकता है। पर कार्रवाई करने की एक संभाव्य युक्ति, दंड प्रक्रिया संहिता में, वे सभी प्रस्ताव जिन्हें अत्यधिक रूप से संहितावद्ध किया जा सकता है, 50क, 50ब, 50ग इत्यादि अनेक धाराओं को अन्तःस्थापित करना होगा। यह आवश्यक है कि ऐसे प्रमुख प्रस्तावों को जो अभिरक्ता में यातना के निवारण से सीधे सुरक्षित रखते हैं, विधायी रूप दिया जाना चाहिए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर, हम यह सिफारिश करेंगे कि सारतः निम्नलिखित प्रस्तावों का समावेश करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 50 के पश्चात् एक नई धारा या धाराएं (जो भी सुविधाजनक हो) अंतःस्थापित की जानी चाहिए:—

(1) जब कभी कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफतारी किया जाता है तो उस पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफतारी की सूचना (निरोध के स्थान के बारे में सूचना के साथ-साथ) निम्नलिखित व्यक्तियों को तत्काल दी जाएगी:—

- (क) गिरफतार किए गए व्यक्ति को जात उसका कोई नातेदार या भिन्न या अन्य व्यक्ति जो भी गिरफतार किए गए व्यक्ति द्वारा नामनिर्देशित किया जाए;
- (ख) ऊपर (क) में अस्कल होने पर स्थानीय विधिक सहायता समिति।
- (2) ऐसी सूचना तार या टेलीफोन द्वारा¹ जो भी सुविधाजनक हो, अभी जाएगी और यह तथ्य कि ऐसी सूचना भेज दी गई है, पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफतार किए गए व्यक्ति के हस्ताक्षर के अधीन अभिलिखित की जाएगी।
- (3) पुलिस अधिकारी, गिरफतार किए गए व्यक्ति का, उसके द्वारा तथा उस स्थान के, जहां पर गिरफतारी की गई है, दो साक्षियों द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित अभिरक्ता भेमो और शरीर प्राप्ति रखी दैत्यार करेगा, और उसे गिरफतार किए गए व्यक्ति के नातेदार को यदि वह गिरफतारी के समय उपस्थित है परिदृस्त करेगा, अथवा उसकी अनुपस्थिति में उसे गिरफतारी की सूचना के साथ ऊपर 1 (क) में उल्लिखित व्यक्ति के पास भेजेगा।
- (4) ऊपर (3) में निर्दिष्ट अभिरक्ता भेमो में निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी:—
 - (i) गिरफतार किए गए व्यक्ति का नाम और उसके पिता या पति का नाम;
 - (ii) गिरफतार किए गए व्यक्ति का पता;
 - (iii) गिरफतारी की तारीख, समय और स्थान;
 - (iv) वह अपराध जिसके लिए गिरफतारी की गई है;
 - (v) गिरफतार किए गए व्यक्ति से बरामद की गई और गिरफतारी के समय भार साधन में ली गई संपत्ति, पदि कोई है; और
 - (vi) कोई शारीरिक क्षति, जो गिरफतारी के समय दिखलाई पड़ सकती है।
- (5) किसी गिरफतार किए गए व्यक्ति की पूछताछ के दौरान, उसके विधिक व्यवसायी को उपस्थित बने रहने के लिए अनुज्ञा दी जाएगी।
- (6) पुलिस अधिकारी, गिरफतार किए गए व्यक्ति को, जैसे ही उसे पुलिस थाने पर लाया जाता है, उस धारा की विषय बस्तु की सूचना देगा और पुलिस डायरी में निम्नलिखित तथ्यों के बारे में प्रक्रिया करेगा:—
 - (क) वह व्यक्ति, जिस गिरफतारी की सूचना दी गई थी;
 - (ख) यह तथ्य, कि गिरफतार किए गए व्यक्ति को इस धारा की विषय बस्तु की सूचना दी गई थी, और
 - (ग) यह तथ्य कि इस धारा द्वारा यथा अपेक्षित अभिरक्ता भेमो तैयार किया गया था।

1. इस समय, इस बाबत कुछ अत्यदृश्यता है। कृपया दिल्ली पुलिस के विवास पर रिपोर्ट देखें। दि. स्टेटमेंट, 13 अप्रैल, 1994, पृष्ठ 9।

5. 17 स्त्रियों की गिरफतारी: सिफारिशें

ऊपर निर्दिष्ट भारत के विधि आयोग की 135वीं रिपोर्ट (अभिरक्ता में स्त्रियां)¹ में की गई विभिन्न सिफारिशों में सिफारिश सं० 1 और 2, गिरफतारी से सीधे सुरक्षित है और हम सिफारिश करते हैं कि उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता में, समुचित स्थान पर, शामिल किया जाना चाहिए।

5. 18 गिरफतारी की शक्ति : सिफारिशें

अब हम प्रमुख प्रश्न अर्थात् उस दिया पर विचार करेंगे जिसमें संज्ञेय अपराधों की बाबत पुलिस को प्रदत्त गिरफतारी को शक्ति का, शक्ति के द्रुत्योग की संभावना को कम में संशोधन किए जाएं तो सिफारिश व्यक्तियों को अवश्यकता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 (1) (क), जिसमें तात्काल उपबंध अंतर्विष्ट है, निम्नवत् है:—

“41. (1) कोई पुलिस अधिकारी भिस्ट्रेट के आदेश के बिना निसी ऐसे व्यक्ति को गिरफतार कर सकता है:—

(क) जो किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है या जिसके विरुद्ध इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है, विश्वसनीय इतिला प्राप्त हो चुकी है या उचित संदेह विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है।”

एक यह भ्रम विद्यमान प्रतीत होता है कि यदि गिरफतार करने की शक्ति है, तो उस शक्ति का प्रयोग अवश्य किया जाए। वे न्यायिक विनिश्चय, जिन्हें हमने इस अध्याय² के सुरक्षित पैराओं में निर्दिष्ट किया है, इस बात की ओर गंभीरतापूर्वक सकेत करते हैं कि विधिक स्थिति ऐसी नहीं है। यह शक्ति, प्रशासनिक विधि के सामान्य सिद्धान्तों के अधीन रहते हुए है। इसके प्रयोग के लिए अधिकारिता, प्रत्येक मामले में दिखलाई जाए। विधि की अपेक्षा मात्र किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने वा परिवाद, उसकी इतिला या सदैह नहीं है, अपितु इस एक और शर्त के समान भी है कि जो संदिग्ध अपराध में गिरफतार किए जाने वाले व्यक्ति की अंतर्स्ता प्रदर्शित करती है। ये सभी प्रतिपादनाएं धारा 21 की स्कीम में अव्यक्त हैं, विशेष रूप से तब जब यह धारा साधारण विधि की पृष्ठभूमि के, जिसमें प्रशासनिक विधि और कानूनी विवक्षा के नियम भी हैं, परिषेध में देखी जाती है। इस प्रकार यह तथ्य कि इसमें एक विवेकाधिकार है और कर्तव्य नहीं, 'सकता है' शब्द द्वारा पर्याप्त रूप से उपर्युक्त है यह तथ्य कि विशिष्ट व्यक्ति की अंतर्गतता स्थापित की जानी है, भी "जिसके विरुद्ध" और "वह ऐसे संबद्ध रह चुका है" शब्दों द्वारा, जो धारा 41 (1) (क) में आते हैं पर्याप्त रूप से उपर्युक्त है।

5. 19 संशोधन की आवश्यकता

स्पष्ट शब्दों के होते हुए भी संशोधन आवश्यक है क्यों कि अनिवार्य अपेक्षाएं कई बार, या तो जानबूझ³ कर या असावधानीवश अनदेखी कर दी जाती हैं। कार्य की अधिकता भी, इन सभी अपेक्षाओं को पूरा करने की आवश्यकता पर पूर्ण और समुचित ध्यान दिए जाने से प्रवारित कर सकती है, यद्यपि वह अननुपालन के लिए माफी नहीं हो सकती है। इस स्थिति में हम इस प्रश्न पर विचार करने समय कि क्या इन अनिवार्य विशेषताओं को प्रकाश में लाने के लिए संशोधन आवश्यक है। एक द्विविधा में पड़ जाते हैं। दूसरी ओर; एक ऐसा उपबंध, जो व्यापक रूप से स्वतंत्रता से संबद्ध है, उतना संक्षिप्त होना चाहिए जितना संभव हो, और यह तर्क नहीं किया जा सकता कि उपबंध भौतिक प्रतीत हो, ऐसा करने के मूल्य पर भी, कुछ अैचित्य के साथ, धारा में वे सभी अपेक्षाएं अधिक सुस्पष्ट रूप से रखने की लूट लेना चाहेगा जो दुर्भाग्यवश कभी-कभी अनदेखी कर दी जाती है। इसके विरुद्ध यह भी एक विचार है कि ऐसे विषय को, जो पहले से ही स्पष्ट है (यदि धारा को सतर्कता पूर्वक पढ़ा जाता है) जोड़ा नहीं जा सकता और ऐसा परिवर्तन, विधायी प्रारूपण की आम प्रक्रिया के प्रतिकूल है। हम अंततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संतुलन पर "संशोधन" की सिफारिश करना अविमान्य होगा। विद्यमान स्थिति ऐसी है जहां संक्षिप्तता पर स्पष्टता का अधिमान है, सिद्धांत और व्यौरे साथ-साथ होने आवश्यक हैं, स्पष्ट की अव्यक्ता, संरचनात्मक जटिलता से ऊपर होनी चाहिए और उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जितना काम भी करना चाहिए और भ्राष्टों से पारभाषी है, भाषा के प्राप्तुर्य को क्षम्य मानना होगा।

1. पैरा 5. 13, पूर्वोदृत।

2. पैरा 5. 7, 5. 8., पूर्वोदृत।

5. 20 धारा 41 के संशोधन की सिफारिश

तदनुसार, हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 में उपधारा (1) के पश्चात् निम्नलिखित नई उपधारा (1क) अंतःस्थापित की जानी चाहिए:

“41.(1क) इस धारा की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी का निम्नलिखित विषयों के संबंध में उचित हृष से समाधान होना चाहिए और समाधान उसे अभिलिखित करना चाहिए:—

(क) उस खंड में निर्दिष्ट परिवाद, इतिलाया संदेह केवल किए गए किसी संज्ञेय अपराध की बाबत ही नहीं है, अपितु उस अपराध में गिरफ्तार किए जा रहे व्यक्ति की अंतर्गतता के बारे में भी है;

(ख) गिरफ्तारी, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति की गतिविधि को इस प्रकार क्रम में लाने के लिए आवश्यक है कि जनता में सुरक्षा की भावना बढ़ाई जा सके या गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को विधि की प्रक्रिया के अन्वयन से रोका जा सके या उसे ऐसे ही अपराध करने या साधारणतः हिंसापूर्ण व्यवहार में अंतर्वलित होने से प्रविरत किया जा सके”।

हमें इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना है कि गिरफ्तारी की अनिवार्यता के बारे में हमारी प्रश्नावली के कुछ उत्तर कुछ निर्बन्धनों के पक्ष में हैं (क्रम सं० 8) वस्तुतः एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने एक सेभिनारमें यह विचार व्यक्त किया था।

जोगिन्द्र सिंह के मामले में, पुलिस द्वारा गिरफ्तारी के स्थान पर हाजिरी की सूचना प्रतिस्थापित करने की संभावना के बारे में अति सहायक सुझाव दिया गया है। यह वास्तव में समन की प्रकृति का है किन्तु इस सीधा तक एक नया विचार है कि भारत में विधान सभित विधि के अधीन जब कि किसी अभियुक्त व्यक्ति को, स्थायालय द्वारा समन जारी किया जा सकता है, पुलिस किसी अभियुक्त व्यक्ति को समन नहीं जारी करती है। ऐसे किसी उपबंध के अंतःस्थापन के लिए और्जित्य के बहुत से कारण हैं। निःसंदेह प्रमुख कारण निजी स्वतंत्रता का संरक्षण है जो क्रियमालों में लोक कल्याण के विचारों का बलिदान किए बिना प्राप्त की जा सकती है। इस युक्ति का प्रतिस्थापन स्वदमेव अभिरक्षात्मक अपराधों को समाप्त करेगा या कम से कम घटाएगा ही। इसलिए हम यह सिफारिश करेंगे कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में, निम्नलिखित प्रारूप के अनुसार एक नई धारा अंतःस्थापित की जानी चाहिए:—

“41क. हाजिरी की सूचना—(1) जहां मामला धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन आता है, वहां पुलिस अधिकारी, संबंध व्यक्ति को गिरफ्तार करने के बजाय, उसे उस पुलिस अधिकारी के समक्ष जो सूचना जारी करता है, या ऐसे अन्य स्थान पर जो सूचना में निर्दिष्ट किया जाए, हाजिर होने की और धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट अपराध के अन्वेषण में पुलिस अधिकारी के साथ सहयोग करने की अपेक्षा करते हुए एक हाजिरी की सूचना जारी कर सकेगा।

(2) जहां ऐसी कोई सूचना किसी व्यक्ति को जारी की जाती है, वहां उस सूचना की शर्तों का अनुपालन करना उस व्यक्ति का कर्तव्य होगा।

(3) जहां ऐसा व्यक्ति, सूचना का अनुपालन करता है और करता रहता है, वहां वह सूचना में निर्दिष्ट अपराध की बाबत तब तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा जब तक कि अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से पुलिस अधिकारी की यह राय न हो कि उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए।

(4) जहां ऐसा व्यक्ति किसी भी समय सूचना की शर्तों का अनुपालन करने में असफल होता है, वहां पुलिस अधिकारी के लिए, उसे सूचना में उल्लिखित अपराध के लिए ऐसे आदेशों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किए गए हो, गिरफ्तार करना विविधपूर्ण होगा।”

1. जोगिन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जे टी (1944) 3 एस० सी० 423, 430, 431।

5. 22 भजिस्ट्रैट का कर्तव्य : सिफारिश

इस क्रम में कि इस अध्याय में उपवर्णित विभिन्न रक्षोपायों का अनुपालन हो, यह बांधनीय है कि किसी स्वतंत्र अभिकरण द्वारा पुलिस के निरीक्षण का एक प्रकार का पर्यवेक्षण होना चाहिए वर्तमान ढांचे में, उस संबंध में एक पृथक अभिकरण के लिए उपबंध करना संभव नहीं हो सकेगा, किन्तु इस प्रयोजन के लिए विद्यमान तंत्र का उपयोग कर पाना संभव होना चाहिए। दोनों, संविधान के अनुच्छेद 22 में यथा अधिकारित संवैधानिक अपेक्षाओं के अधीन और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 56 के अधीन गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को भजिस्ट्रैट के समक्ष पेश किया जाना है। संहिता की धारा 56 और 57 को संयुक्त प्रवर्तन के आधार पर, भजिस्ट्रैट के समक्ष अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश किया जाना आवश्यक है।¹ किन्तु ऐसे मामलों में जहां अनौपचारिक गिरफ्तारियां की जाती हैं अभियुक्त व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर भजिस्ट्रैट के समक्ष नहीं पेश किया जाता, इसके बजाय उसे पूछताछ के लिए पुलिस अभिरक्षा में रखा जाता है और उसकी गिरफ्तारी, संस्कीर्ति के लिए या आ आयुद्ध अथवा बाल की बरामदगी के लिए तथ्यों को बताने के पश्चात् ही दिखलाई जाती है। इस दुष्प्रथा के निवारण के लिए, उस भजिस्ट्रैट को जिसके समक्ष अभियुक्त व्यक्ति को पेश किया जाता है, अभियुक्त व्यक्ति से उसकी गिरफ्तारी का समय और तारीख पूछना और उसे अभिलिखित करना चाहिए। हावारी सिफारिश यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता में निम्नलिखित प्रारूप के अनुसार एक नई धारा 57 के अंतःस्थापित की जानी चाहिए:—

“57क. कलिपथ तथ्यों को सत्यापन करना भजिस्ट्रैट का कर्तव्य—जब बिना बारंट के गिरफ्तार किया गया कोई व्यक्ति भजिस्ट्रैट के समक्ष पेश किया जाता है, तब वह भजिस्ट्रैट, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से की जाने वाली जांच द्वारा अपना यह समाधान करेगा कि (गिरफ्तारी, गिरफ्तारी के अधिकारों की संसूचना, आदि के संबंध में रक्षोपायों से संबंधित धारा एं प्रविष्ट की जानी है) धारा 56 और 57 के उपबंधों का अनुपालन किया गया है और वह गिरफ्तारी के समय तथा तारीख का भी पूछा करेगा और उसे अभिलिखित करेगा।”

5. 23 अन्य सामग्रे

इस पैरा के ठीक पूर्ववर्ती कुछ वैराग्यों में हमने जो सिफारिशें की हैं, उनमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मामलों पर विचार किया गया है जिन पर विद्यार्थी उपबंध अतिशीघ्र वांछित हैं। इस समय हम कुछ ऐसे विषयों की बाबत, जिन पर इस अध्याय में कुछ चर्चा की गई है सिफारिशें नहीं कर रहे हैं क्योंकि वे विद्यार्थी संक्रीयकरण ये आसानी से स्वयं समाहित नहीं हो सकते हैं। तथा पुलिस में नुक्ल में उन्हें अतिशीघ्र संहिताबद्ध करना आवश्यक है। हम यहां ऐसे विशेषित विषयों को निर्दिष्ट कर रहे हैं जो न्यायिक अधिकारियों की गिरफ्तारी और संसद् सदस्यों की गिरफ्तारी से संबद्ध हैं। इस तथ्य का, कि हम इस रिपोर्ट में इन विषयों पर विद्यार्थी संशोधनों का सुझाव नहीं दे रहे हैं, यह अर्थ नहीं है कि वे व्यापक महत्व के नहीं हैं। यदि ऐसी समस्याएं पूँज़ होती हैं तो कानूनी उपबंधों की सिफारिश करके उन पर ध्यान देना आवश्यक हो सकेगा।

अब तक भारत के विधि आयोग की 135 वीं रिपोर्ट (अभिरक्षा में स्त्रियां) में विचार किए गए विषयों का संबंध है, हमने वर्तमान रिपोर्ट के संदर्भ में गिरफ्तारी की विधयस्तु से सीधे संगत विषयों पर² इस विध्याय में पहले ही सिफारिशें की हैं। किन्तु उस रिपोर्ट में भी शेष सिफारिशों को भी कार्यान्वयित करना आवश्यक है। हम पाते हैं कि संहिता का संशोधन करने के लिए हाल में (1 मई, 1994) को पुर: स्थापित विधेयक में 135वीं रिपोर्ट में विचार किए गए विषयों में से एक या दो विषयों को कार्यान्वयित किया गया है। किन्तु उस रिपोर्ट की अन्य अनेक सिफारिशों को छोड़ दिया गया है, यद्यपि वे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों से संबंधित हैं। हम विधेयक के खंडों पर टिप्पण में, इस अक्रियान्वयन के लिए किसी कारण का पता लगाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। हमारा यह मत है कि शेष सिफारिशों को भी कार्यान्वयित किया जाना चाहिए क्योंकि वे स्त्रियों के हित की रक्षा करेंगी।

1. खट्टी बनाम विहार राज्य, ए० आई० अप्र० 1981 एस० सी० 928 : 1981 किंला०ज० 470 (एस सी)।

2. पैरा 5. 17, पूर्वोद्धृत।

अध्याय 6

पुलिस थाने पर बुलाया जाना

6. 1 भूमिका

इस अध्याय में एक ऐसी स्थिति पर विचार करने की प्रस्थापना करते हैं जो संज्ञेय अपराधों में पुलिस द्वारा अन्वेषण का भाग रूप है, अर्थात् पुलिस थाने पर किसी व्यक्ति (साक्षी) को बुलाया जाना। पुलिस द्वारा किया जाने वाला यह विशिष्ट कृत्य, दांडिक प्रक्रिया तंत्र के कुल मिला कर दृष्टिकोण से मात्र एक प्रारंभिक प्रक्रम और अमहत्वपूर्ण प्रतीत हो सकता है, किन्तु इस रिपोर्ट की विषय-वस्तु के प्रयोजन के लिए इसका निर्णयिक महत्व है।

6. 2 वर्तमान विधि

आरंभ में, हम संक्षेप में इस विषय पर वर्तमान विधि पर विचार करेंगे। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का अध्याय 12, जिसका शीर्षक “पुलिस को इत्तिला और उनकी अन्वेषण करने की शक्तियाँ” है, धारा 156 द्वारा, किसी पुलिस थाने के भारतीय अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति प्रदान की गई है। अन्वेषण की प्रक्रिया धारा 157 से आरंभ होती है जिसके अधीन, अन्वेषण अधिकारी से, अन्य वातों के साथ-साथ, यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए, और, यदि आवश्यक हो तो अपराध का पता चलाने और उसकी विरपतारी के उपाय के लिए, उस स्थान पर जाएगा। धारा 158 के अधीन, मजिस्ट्रेट स्वयं, अन्वेषण के लिए या प्रारंभिक जांच करने के लिए, निदेश दे सकता है। अधिकारी सामलों में पुलिस अधिकारी धारा 160 के अधीन साक्षियों को पुलिस थाने पर बुलाता है। (इस समय इसी की विस्तृत रूप में जांच की जाती है) और इस बात पर ध्यान दिया जाए कि धारा 161 के अधीन अन्वेषण अधिकारी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित समझे जाने वाले किसी व्यक्ति की मौखिक परीक्षा कर सकता है।

संहिता की धारा 160 निम्नवत् है:—

“160. साक्षियों को हाजिरी की अपेक्षा करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति—(1) कोई पुलिस अधिकारी, जो इस अध्याय के अधीन अन्वेषण कर रहा है, अपने थाने की या किसी पास के थाने की सीमाओं के अन्दर विद्वानान किसी गोसे व्यक्ति से, जिसको दो गई इत्तिला से या अन्यथा उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित होना प्रतीत होता है, अपने समक्ष हाजिर होने की अपेक्षा लिखित आदेश द्वारा कर सकता है और वह व्यक्ति अपेक्षानुसार हाजिर होगा:

परन्तु किसी पुरुष से जो पांचवर्ष से कम आयु का है या किसी स्त्री से, ऐसे स्थान से जिसमें ऐसा पुरुष या स्त्री निवास करती है, भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

(2) अपने निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर उपधारा (1) के अधीन हाजिर होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के उचित वर्चों का पुलिस अधिकारी द्वारा संदाय करने के लिए राज्य सरकार इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा उपबंध कर सकती है।”

6. 3 धारा 160 दंड प्रक्रिया संहिता—सिफारिश

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160, जिसे हमने पूर्ववर्ती पैरा में उद्धृत किया है, नैत्यिक प्रकृति का कोई गौण उपबंध नहीं है, अपितु यह किसी मामले का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी को, पूछताछ करने के लिए किसी व्यक्ति को पुलिस थाने समन करने की बहुत व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है। अधिनियमन धारा, पुलिस अधिकारियों को, पूछताछ के प्रयोजनों के लिए व्यक्तियों को पुलिस थाने बुलाने की सदियों पुरानी परम्परा को विधायी अनुमोदन मंजूर करती है। कुल मिला कर, पुलिस द्वारा, इस व्यक्ति का दुरुप्रयोग किया जाता है। यद्यपि विधि, अन्वेषण अधिकारी से, लिखित आदेश द्वारा पूछताछ के लिए

1. भारत का विधि आयोग, “बलान्संग और सहबद्ध अपराध-मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न” पर 84वीं रिपोर्ट और “अभिरक्षा में स्त्री” पर 133वीं रिपोर्ट।

किसी व्यक्ति को समन करने की अपेक्षा करती है। तिस पर भी, बास्तविक व्यवहार में, विरलतः उसका अनुकरण किया जाता है। साधारणतः अन्वेषण अधिकारी या पुलिस थाने का कोई सियाही, साक्षी को पुलिस थाने पर बुलाता है जहाँ उससे पूछताछ की जाती है। कई बार तो उससे बंटों तक और कभी-कभी तो कई दिनों तक प्रतीक्षा कराई जाती है और यदि पूछताछ के दौरान साक्षी उस घटना से अज्ञान का अभिवाक् करता है जो अन्वेषण की विषय-वस्तु ही सकती है, तो उसे पुलिस थाने पर धमकाया जाता है, प्रीरित किया जाता है, उस पर हमला किया जाता है और उसे यातना भी दी जाती है। कुछ व्यक्तियों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या पूछताछ के लिए किसी साक्षी की पुलिस थाने पर बुलाना आवश्यक है। साक्षी, अभियुक्त व्यक्ति नहीं है, उसे साक्ष्य देने के लिए पुलिस थाना पर जाने की ज़रूरत नहीं है यद्यपि उत्तरदाती नागरिक होने के कारण यह प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह पुलिस को उन तथ्यों और घटनाओं की बाबत इतिला दे जो उसकी जानकारी में हो सकती है। वह इतिला, पुलिस अधिकारी द्वारा साक्षी से, उसके निवास स्थान पर अधिग्राप्त की जा सकती है। तथापि, कुछ मामलों में ऐसी विशेष परिस्थितियाँ हो सकती हैं, जहाँ पुलिस थाने पर साक्षी की उपस्थिति आवश्यक हो सकती है, किंतु कुल मिला कर अन्वेषण अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए पुलिस थाने पर साक्षी की हाजिरी की अपेक्षा करने वाला उपबंध, आवश्यक या बांधनीय नहीं प्रतीत होता है। यह धारा, किसी साक्षी को, पुलिस थाने पर प्रवीड़ित करने और यातना देने के लिए एक आसान साधन और अवसर का उपबंध करता है। इसलिए, हमारा यह मत है कि सामान्यतः पुलिस थाने पर साक्षी की हाजिरी आवश्यक नहीं होगी। इसके बजाय, उससे पूछताछ या उसकी परीक्षा उसके निवास स्थान पर की जानी चाहिए, किंतु, यदि किसी विशिष्ट मामले में ऐसा करना आवश्यक है, तो उसके लिए कारण अभिलिखित किए जाएं और साक्षी को लिखित आदेश द्वारा समन किया जाए। विवरण दृष्टिकोण को दूर करने के लिए धारा 160(1) का संशोधन किए जाने की आवश्यकता है।

6. 4 शास्त्रिक मंजूरी की आवश्यकता

धारा 160(1) के परन्तुक का प्रमुख उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किशोर पुरुषों और स्त्रियों की परीक्षा उनके परिवर्तित परिवर्ष में की जाए, ताकि वे उनके शारीरिक दुरुप्रयोग की संभावना और उनके मन पर मनोवैज्ञानिक तनाव की संभावना का विलोपन हो जाए। आधुनिक मुग्ध में, जब कि एकान्तता के के संरक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है, यह उपबंध स्पष्टतः प्रचुर महत्व पा लेता है। किसी भी दशा में, यह निहित धारणा कि द्वीप आदि को पुलिस थाने पर बुलाना अत्यधिक अवांछनीय कृत्य है, विवक्षित है कि उपबंध का सावधानीपूर्वक पालन किया जाए। यद्यपि इस समय, विधि, इस निवैधन का अधिनियमन करते समय, इस नमस्क्रियात्मक प्रतिपेद के प्रवर्तन का प्रत्यक्ष और विनिर्दिष्ट उपबंध करने में असफल रही है। इस स्थिति का उपचार करने के लिए ही दांडिक मंजूरी की प्रकृति का एक शास्त्रिक उपबंध करने की आवश्यकता है।

6. 5 धारा 166क भारतीय दंड संहिता—सिफारिश

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160 का, उसके अनुपालन की अपेक्षा, भी अधिक हुआ है। परिणामस्वरूप साक्षों के हित की रक्षा करने के लिए, विधि द्वारा संरक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। विधि आयोग ने, “बलान्संग और सहबद्ध अपराध: मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के प्रश्न” पर अपनी 84वीं रिपोर्ट में इस प्रश्न पर विचार किया था और दंड प्रक्रिया की संहिता की धारा 160 के अतिलंघन को आवेदित करने के लिए भारतीय दंड संहिता में धारा 166 के स्वप्न में एक विनिर्दिष्ट उपबंध अधिनयमित करने की सिफारिश की थी। पुनः, “अभिरक्षा में स्त्री” पर अपनी 135वीं रिपोर्ट में, ऐसे लोक सेवक के लिए जो जानबूझकर विधि के ऐसी निवेदन की अवज्ञा करता है जो उसे किसी अपराध के अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति की हाजिरी की अपेक्षा से प्रतिष्ठित करता है, दंड का उपबंध करने के लिए भारतीय दंड संहिता में एक नई धारा 166क के अन्तःस्थापन की सिफारिश की थी। दुर्भाग्यवश पूर्ववर्ती सिफारियों को कार्यान्वित नहीं किया गया। परिणामस्वरूप, किसी साक्षी के लिए उपबंधित रक्षोपाय, कार्यान्वित नहीं हो पा रहे हैं।

6. 6. हमने इस अध्याय में जो कुछ कहा है उसके परिप्रेक्ष्य में हम पुनः भारत के विधि आयोग की पूर्वोक्त पूर्ववर्ती रिपोर्टों में की गई इस आशय की सिफारिश को दोहराते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 166 के पश्चात, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अतिलंघन पर शास्त्रित का उपबंध करने के लिए एक नई धारा 166क अन्तःस्थापित की जानी चाहिए। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाए कि स्थिति, दंड संहिता की धारा 166 या संहिता की किसी अन्य धारा द्वारा शासित होती है, तो भी हमारा संशक्त अभिमत यह है कि एक विनिर्दिष्ट उपबंध की, जैसी की हमने सिफारिश की है, आवश्यकता है।

अध्याय 7

चिकित्सीय परीक्षा

7. 1 फायदाप्रद और प्रतिकूल पक्ष

चिकित्सीय परीक्षा के विषय की अन्वेषण के दौरान किए जाने वाले अनाचार के साथ निम्नलिखित दो पक्षों में सुसंगति है :

(क) किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए उपयोगी हो सकती है कि अभिरक्षा के दौरान उसके शरीर पर कठियत्यां की गई थी¹ यदि गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् किया जाए तो यह सिद्ध करने के लिए उपयोगी हो सकती है कि गिरफ्तारी के समय उसके शरीर पर कोई क्षति नहीं थी । यह “फायदाप्रद” पक्ष है । अभिरक्षान्तर्गत बलात्संग के अभियुक्त किसी लोक सेवक की चिकित्सीय परीक्षा, साधिक दृष्टिकोण से भी भृत्यवूर्ण है और समान रूप से फायदाप्रद के पक्ष के अंतर्गत आने वाली भानी जा सकती है ।

(ख) उपर्युक्त के ठीक विरुद्ध, चिकित्सीय परीक्षा का एक प्रतिकूल पक्ष है । चिकित्सीय परीक्षा के समय या उसके दौरान, अनाचार, विशेष रूप से लैंगिक अपराधों के ऐसे शिकार व्यक्तियों की दशा में, हो सकते हैं जो अपने आप को चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रस्तुत करते हैं । विधि को इस संभावना के विरुद्ध भी संरक्षण करता है । इसमें संदेह नहीं कि लैंगिक अपराध के अभियुक्त शिकार व्यक्ति पर किया गया अनाचार, तकनीकी रूप से “अभिरक्षान्तर्गत” अपराध के अंतर्गत नहीं आता है, किन्तु अभिरक्षा में स्त्रियों पर लैंगिक अपराध के मामले हुए हैं । हम सोचते हैं कि इस विषय के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करना आवश्यक है ।

7. 2 विभिन्न स्थितियों का प्रबर्गीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 5.3 और धारा 5.4 किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करती है । धारा 5.3 के अधीन, पुलिस अधिकारी, यदि उसके पास यह विश्वास करने के उचित आद्धार है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की शारीरिक परीक्षा ऐसा अपराध किए जाने के बारे में साध्य प्रदान करेगा तो उस व्यक्ति की ऐसी परीक्षा करा सकेगा । अभियुक्त व्यक्ति के लिए ऐसी चिकित्सीय परीक्षा करना अनिवार्य होगा । दूसरी ओर धारा 5.4 कोई गिरफ्तार किया गया व्यक्ति की स्वयं अपनी चिकित्सीय जांच करने का अधिकार प्रदान करती है यदि वह, मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने के समय यह अभियुक्त न करता है कि उसके शरीर की परीक्षा से ऐसा साक्ष्य प्राप्त होगा जो उसके द्वारा किसी अपराध के किए जाने को नासाबित कर देगा या जो यह साबित करेगा कि उसके शरीर के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति ने कोई अपराध किया था । ऐसी प्रार्थना किए जाने पर मजिस्ट्रेट, किसी रजिस्ट्रीक्यूट चिकित्सीय व्यवसायी द्वारा ऐसे व्यक्ति के शरीर की चिकित्सीय परीक्षा के लिए निदेश देने के लिए आवश्यक है यदि मजिस्ट्रेट का यह विचार नहीं है कि प्रार्थना विलम्ब करने या न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के प्रयोजन के लिए गई है । ये दो साधारण उपबंध सभी प्रकार के मामलों में, जिसके अंतर्गत बलात्संग और सजात अपराध तथा अभिरक्षान्तर्गत अपराध है, चिकित्सीय परीक्षा के प्रश्न को विनियमित करते हैं ।

7. 3 अभितौर पर अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा : धारा 5.3-5.4 दं० प्र० संहिता ।

सिद्धान्त: चिकित्सीय परीक्षा को निम्नलिखित शीर्षों के अधीन प्रबर्गीकृत किया जा सकता है :

- (क) अभियुक्त व्यक्ति की आभितौर पर चिकित्सीय परीक्षा;
- (ख) बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा;
- (ग) आभितौर पर शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा;
- (व) बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा ।

1. भारत का विधि आयोग, बलात्संग और सद्व्यवहार अपराध-मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न पर ४५वीं रिपोर्ट ।

जहां तक प्रबन्ध (ग) के अधीन चिकित्सीय जांच का संबंध है, यह साधारणतः अनाचार की कोई समस्या प्रस्तुत नहीं करती है । प्रबन्ध (ब) और (च) की चिकित्सीय परीक्षा के बारे में, ये दोनों बलात्संग और सजात अपराधों से संबंधित हैं । ऐसे मामलों में अभियुक्त और साथ ही शिकार व्यक्ति, दोनों की चिकित्सीय परीक्षा आवश्यक है क्योंकि यह अधिकथनों के सबूत की धावत मूल्यवान साक्ष्य का उपबंध करती है । बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में अभियुक्त और शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा पर विधि आयोग द्वारा उसकी ४५वीं “रिपोर्ट” में व्यापक रूप से विचार किया गया है । विस्तृत विचार विमर्श के पश्चात् आयोग का यह मत था कि दंड प्रक्रिया संहिता १९७३ की धारा ५.३ और ५.४ के विद्यमान उपबंध किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य दे पाने में पर्याप्त नहीं थे । आयोग ने धारा ५.३ का संशोधन करने और दंड प्रक्रिया संहिता में एक नई धारा १६.४ को अन्तःस्थापित करने की सिफारिश की थी । हम उन सिफारिशों से सहमत हैं और यह द्वारा दी गई विवरणों के उन्हें कार्यान्वयन किया जाना चाहिए ।

प्रसंगवश ध्रुव यह पाते हैं कि हाल में² (९ मई, १९९४ को) दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन करने के लिए पुरस्थापित विधेयक में, विधि आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर इस विधि पर मूल अधिनियम की धारा ५.३ और ५.४ का संशोधन करने के लिए है । तथापि इस पाते हैं कि छंडों पर टिप्पण में विधि आयोग की रिपोर्ट के प्रति कोई निदेश नहीं किया गया है । यदि ऐसा किया गया होता, तो वह द्वारा सहायक रहा होता ।

7. 4 अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ५.३ पुलिस की प्रार्थना पर अभियुक्त व्यक्ति की अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के संबंध में है, जब कि धारा ५.४, अभियुक्त व्यक्ति स्वयं अपनी चिकित्सीय परीक्षा करने के अधिकार से संबद्ध है । धारा ५.४, फायदाप्रद उपबंध है जो किसी अभियुक्त को उसके द्वारा किए गए किसी अपराध को नासाबित करने या उसके शरीर के विरुद्ध किए गए किसी अपराध को साबित करने का अवसर प्रदान करती है । यह उपबंध, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से सीधे संबद्ध है । धारा ५.४ के विद्यमान उपबंधों के अधीन यदि गिरफ्तारी के अधीन किसी व्यक्ति को यातना दी जाती है, या उस पर हमला किया जाता है, तो वह जब मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब मजिस्ट्रेट से, यह सिद्ध करने के लिए किया जाता है कि निरोध की अवधि के द्वारा न हमला किया गया है, अपने शरीर की चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रार्थना कर सकता है । यद्यपि यह अधिकार विद्यमान है, फिर भी जैसा कि पहले संकेत किया गया है, गिरफ्तार किए गए अधिकतर व्यक्ति, विशेष रूप से वे जिनके विरुद्ध अभिरक्षान्तर्गत अपराध किए गए हैं अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं । यदि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति, जो मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, इस अधिकार को जानता है तो भी वह पुलिस की उपस्थिति में परिवाद करने का या चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रार्थना करने का साहस नहीं करता है । अभिरक्षान्तर्गत यातना या लैंगिक शोषण के मौकों को न्यूनतम करने के लिए, यह आवश्यक और बाल्नीय है कि अनाचारों के निवारण के हित में धारा ५.४ को सशक्त किया जाना चाहिए जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तब मजिस्ट्रेट के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यह पृच्छा करना आजापक होना चाहिए कि वह उसे अभिरक्षा में किसी यातना और अनाचार या लैंगिक शोषण का परिवाद है तथा मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यह भी सूचित किया जाना चाहिए कि विधि के अधीन उसे अपने चिकित्सीय परीक्षा करने का अधिकार है: उच्चतम न्यायालय द्वारा शीला बाल्नाम भहारादू शाज्य के मामले में³ यह प्रेक्षण किया । यहा है कि यह भी बाल्नीय है कि ऐसी जानकारी देना और पृच्छा करना पुलिस अधिकारी की अनुपस्थिति में होना चाहिए । मजिस्ट्रेट को गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से कोई पृच्छा करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कोई पुलिस अधिकारी अभियुक्त के साथ-साथ उपस्थिति न हो । हमारा यह मत है कि धारा ५.४ को और प्रभावी तथा सार्थक बनाने के लिए उसको संशोधन करने की जरूरत है । हमारा यह और मत है कि संशोधन धारा में वे विषय विस्तृत रूप से उपर्याप्त होने चाहिए । हम, प्रसंगवश यह नीट कर सकते हैं कि १९८४ के उ० प्र० अधिनियम सं० १ धारा धारा ५.४ का संशोधन किया जा चुका है ।

7. 5 कार्यपत्र पर टीका टिप्पणी

हम इस प्रक्रम पर यह उल्लेख कर सकते हैं कि कार्य पत्र के साथ-साथ हमने इस प्रश्न पर विचार आमंत्रित किए थे कि क्या गिरफ्तारी के प्रत्येक मामले में या पूछताछ के दौरान अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा

2. दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक, १९९४ (९ मई, १९९४) ।

3. ए० आई० आर० १९९३ एस सी ३७८ ।

के लिए एक उपबंध होना चाहिए। इस प्रश्न पर विश्रित प्रतिक्रिया रही है। अधिकतर पुलिस अधिकारी और कुछ अधिवक्ता इसे आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, एक बरिष्ठ पुलिस अधिकारी और कुछ अन्य यक्तियों का यह अभिमत है कि विशेष रूप से अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामलों में, अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करना एक आवश्यकता है। कुछ प्रतिक्रियाओं में किसी व्यक्ति को, उसकी गिरफ्तारी पर ही और पुष्टताछ से पूर्व अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा का सुझाव दिया गया है। हम इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि इससे अन्वेषण में बिलंब होगा।

7.6 सिफारिश

उपर्युक्त परिचर्चा के परिप्रेक्ष्य में हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 का उस अध्याय के पैरा 7.4 में बताए गए बिंदुओं का समावेश करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए। चिकित्सीय रिपोर्ट के व्यारों का समावेश करने के लिए प्रारूप तैयार करते समय, विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्याय 4 से सहायता ली जा सकती है।

अध्याय 8

अधम इतिला रिपोर्ट

8.1 भूमिका

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 12 और 13, अपराध के अन्वेषण और अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के लिए प्रक्रिया अधिकारियत करते हैं। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इतिला प्राप्त होने पर पुलिस तंत्र सक्रिय हो जाता है। ऐसी इतिला, यदि संज्ञेय अपराध से सम्बद्ध है तो धारा 154 के अधीन और यदि इतिला असंज्ञेय है तो धारा 155 के अधीन अभिलिखित की जाती है। ये दोनों धाराएं महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यदि धाराओं की स्कीम का पूरी तरह पालन किया जाए तो विचारण पूर्व प्रक्रम (गिरफ्तारी, पुछताछ, अन्वेषण त्वायालय को रिपोर्ट का अन्वेषण) पर दांडिक प्रक्रिया तंत्र गति में हो जाता है।

धारा 154 के अधीन किसी संज्ञेय अपराध की इतिला प्राप्त होने पर पुलिस को न्यायालय के आदेश के बिना, अन्वेषण करने की शक्ति है, जब कि धारा 155 के अधीन किसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी असंज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति नहीं है। किसी संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इतिला, यदि पुलिस को दी जाती है तो वह धारा 154 या 155 के अनुसार अभिलिखित की जानी चाहिए। साधारणतः ऐसा नहीं किया जाता है और ऐसा अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की दशा में अधिक होता है। इस अध्याय के प्रवर्ती पैराओं को उपर्युक्त स्थिति के योगदायी कुछ कारकों की जांच करने का प्रस्ताव कर रहे हैं और विधि में सुधार के रूप में ऐसे उपायों का, जो आवश्यक प्रतीत होते हैं, सुझाव दे रहे हैं।

8.2 इतिला का अरजिस्ट्रीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 पुलिस के लिए किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित इतिला रजिस्टर करना आवश्यकर बनाती है। धारा 157 पुलिस के लिए भासले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करना, तथा अपराधी की बरामदगी और गिरफ्तारी के लिए उपाय करना और आवश्यकर बनाती है। दुभियवश अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में भी इन उपबंधों के अनुपालन का प्रायः अभाव रहता है। परिवारों का अरजिस्ट्रीकरण, पुलिस थानों की एक आम दुष्प्रथा है। इस दुष्प्रथा के अनेक कारण हैं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने इस तक्षण पर विचार किया है कि भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा “भारत में पुलिस की छवि”, पर किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया था कि 50 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने पुलिस थानों में परिवारों के अरजिस्ट्रीकरण का उल्लेख एक आम दुष्प्रथा के रूप में किया था। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अरजिस्ट्रीकरण के लिए अनेक उपादान बताए थे जिसमें अनेक अन्य कर्तव्यों के भारी दबाव के बीच अन्वेषणात्मक कार्य का अतिरिक्त भार लेने में कर्मचारिकृत की अरुचि के अतिरिक्त बाहरी प्रभाव और छप्टाचार भी है। यह भी कहा गया था कि यदा-कदा “उनके भारसाधन के अधीन दक्ष पुलिस प्रशासन” दिखाने के लिए एक रिकार्ड पर रिपोर्ट किए गए आंकड़े कम करने की इच्छा भी होती थी। आपराधिक स्थिति के निर्धारण और पुलिस कार्य निष्पादन के भूल्यांकन के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चाधिकारियों द्वारा लागू किए जाने वाले सांख्यिकीय अभिगम के कारण ऐसा होता है जिसका परिणाम यह है कि यह दृष्टिकोण अधिकारी तंत्र में नीचे की ओर बढ़ता जाता है और पुलिस थाने के अधिकारियों के मध्य, जब और जैसे ही अपराध उनकी जानकारी में लाए जाते हैं उनकी रजिस्टर करने में उनके अडियल्पन और और इंकार के रूप में प्रकट होता है। अनुभव से पता चला है कि जब कभी पुलिस प्रशासन द्वारा इस दुष्प्रथा को हटाने का गंभीर प्रयास किया गया तब रजिस्ट्रीकृत संज्ञेय अपराधों की संख्या में प्रचुर वृद्धि हुई है। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इतिला को अभिलिखित करने से पुलिस द्वारा इंकार एक गंभीर विषय है जो परिवारों को उत्पीड़न में डालता है और पुलिस की विश्वसनीयता की भी प्रभावित करता है। हमारा सशक्त अभिमत है कि किसी संज्ञेय अपराध की पुलिस को दी गई प्रथम इतिला के अरजिस्ट्रीकरण के लिए प्रभावी विधि होनी चाहिए।

1. राष्ट्रीय पुलिस आयोग 40वीं रिपोर्ट (1980), पृष्ठ 2

2. भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1992) 2 आल इंडिया क्रिमिनल रिपोर्ट, पृष्ठ 546

के लिए एक उपबंध होना चाहिए। इस प्रश्न पर मिश्रित प्रतिक्रिया रही है। अधिकतर पुलिस अधिकारी और कुछ अधिकारी इसे आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी और कुछ अन्य यक्तियों का यह अभिमत है कि विशेष रूप से अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामलों में, अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करना एक आवश्यकता है। कुछ प्रतिक्रियाओं में किसी व्यक्ति को, उसकी गिरफ्तारी पर ही और पूछताछ से पूर्व अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा का सुझाव दिया गया है। हम इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि इससे अन्वेषण में विलंब होगा।

7.6 सिफारिश

उपर्युक्त परिचर्चा के परिप्रेक्ष्य में हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 का उस अध्याय के पैरा 7.4 में बताए गए किसी का समावेश करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए। चिकित्सीय रिपोर्ट के व्यौरों का समावेश करने के लिए प्राप्त तंत्राएँ करते समय, विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्याय 4 से सहायता ली जा सकती है।

अध्याय 8

प्रथम इतिला रिपोर्ट

8.1 अभियान

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 12 और 13, अपराध के अन्वेषण और अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के लिए प्रक्रिया अधिकथित करते हैं। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इतिला प्राप्त होने पर पुलिस तंत्र संक्रिय हो जाता है। ऐसी इतिला, यदि संज्ञेय अपराध से सम्बद्ध है तो धारा 154 के अधीन और यदि इतिला असंज्ञेय है तो धारा 155 के अधीन अभिलिखित की जाती है। ये दोनों धाराएँ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यदि धाराओं की स्कीम का पूरी तरह पालन किया जाए तो विचारण पूर्व प्रक्रम (गिरफ्तारी, पूछताछ, अन्वेषण न्यायालय की रिपोर्ट का अन्वेषण) पर दांडिक प्रक्रिया तंत्र गति में हो जाता है।

धारा 154 के अधीन किसी संज्ञेय अपराध की इतिला प्राप्त होने पर पुलिस को न्यायालय के आदेश के बिना, अन्वेषण करने की शक्ति है, जब कि धारा 155 के अधीन किसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी असंज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति नहीं है। किसी संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इतिला, यदि पुलिस को दी जाती है तो वह धारा 154 या 155 के अनुसार अभिलिखित की जानी चाहिए। साधारणतः ऐसा नहीं किया जाता है और ऐसा अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की दशा में अधिक होता है। इस अध्याय के परवर्ती पैराओं को उपर्युक्त स्थिति के योगदायी कुछ कारकों की जांच करने का प्रस्ताव कर रहे हैं और विधि में सुधार के रूप में ऐसे उपायों का, जो आवश्यक प्रतीत होते हैं, सुझाव दे रहे हैं।

8.2 इतिला का अरजिस्ट्रीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 पुलिस के लिए किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित इतिला रजिस्टर करना आवश्यकर बनाती है। धारा 157 पुलिस के लिए सामग्री के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करना, तथा अपराधी की बरामदी और गिरफ्तारी के लिए उपाय करना और आवश्यक बनाती है। दुर्भाग्यवश अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में भी इन उपर्योगों के अनुपालन का प्रायः अमाव रहता है। परिवारों का अरजिस्ट्रीकरण, पुलिस थानों की एक आम दुष्प्रथा है। इस दुखद स्थिति के अनेक कारण हैं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने इस तक्षण पर विचार किया है कि भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा “भारत में पुलिस की छवि”, पर किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया था कि 50 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने पुलिस थानों में परिवारों के अरजिस्ट्रीकरण का उल्लेख एक आम दुष्प्रथा के रूप में किया था। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अरजिस्ट्रीकरण के लिए अनेक उपायों बताए थे जिसमें अनेक अन्य कर्तव्यों के भारी दबाव के बीच अन्वेषणात्मक कार्य का अतिरिक्त भार लेने में कमचारिवृद्धि की अस्विचि के अतिरिक्त बाहरी प्रभाव और अष्टाचार भी है। यह भी कहा गया था कि यदा-न-कदा “उनके भारसाधन के अधीन दक्ष पुलिस प्रशासन” दिखलाने के लिए रिकार्ड पर रिपोर्ट किए गए आंकड़े कम करने की इच्छा भी होती थी। आपराधिक स्थिति के निर्वारण और पुलिस कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चाधिकारियों द्वारा लागू किए जाने वाले सांख्यिकीय अभिगम के कारण ऐसा होता है जिसका परिणाम यह है कि यह दृष्टिकोण अधिकारी तंत्र में नीचे की ओर बढ़ता जाता है और पुलिस थाने के अधिकारियों के मध्य, जब और जैसे ही अपराध उनकी जानकारी में लाए जाते हैं उनको रजिस्टर करने में उनके अडियलपन और और इंकार के रूप में प्रकट होता है। अनुभव से पता चला है कि जब कभी पुलिस प्रशासन द्वारा इस दुष्प्रथा को हटाने का गंभीर प्रयास किया गया तब रजिस्ट्रीकूल संज्ञेय अपराधों की संख्या में प्रचुर वृद्धि होती है। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इतिला को अभिलिखित करने से पुलिस द्वारा इंकार एक गंभीर विषय है जो परिवारों को उत्पीड़न में डालता है और पुलिस की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है। हमारा सशक्त अभिमत है कि किसी संज्ञेय अपराध की पुलिस को दी गई प्रथम इतिला के अरजिस्ट्रीकरण के लिए प्रभावी विधि होनी चाहिए।

1. राष्ट्रीय पुलिस आयोग 40वीं रिपोर्ट (1980), पृष्ठ 2

2. भगवान चिह्न बनाम पंजाब राज्य, (1992) 2 आल इंडिया क्रिमिनल रिपोर्ट, पृष्ठ 546

8. 3 धारा 167क संहिता—सिफारिश

विद्यालय विधि के अधीन संहिता की धारा 154(1) द्वारा यथा ध्यान में रखी गई इतिला अभिलिखित करने से इंकार करने पर पुलिस के विरुद्ध कोई दांडिया वारंवार करने के लिए कोई उपबंध नहीं है। धारा 154 की उपवारा (3) यह उपबंध करती है कि पुलिस द्वारा किसी भास्तु को रजिस्टर करने से इंकार करने पर, व्यक्ति, शिकायत का सार लिखित रूप में पुलिस अधिकारी को भेज सकता है जो भास्तु का स्वयं अन्वेषण कर सकता है या किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को उसका अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है। यह प्रक्रिया, नियमवादतः उपयोगी है जैसी कि एक रिपोर्ट किए गए भास्तु में व्याख्या की गई है, किन्तु यह अपने आप में, अरजिस्ट्रीकरण की समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त नहीं है। भारत के विधि आयोग ने "बलात्संग और सहबद्ध अपराधों" संबंधी अपनी 84वीं रिपोर्ट में इस व्यक्ति पर विचार किया है। आयोग ने यह पाया या कि प्रशासनिक कार्रवाई या इतिला देने की वैकल्पिक पद्धति अधिक प्रभावी सावित नहीं होती और गलती करने वाले पुलिस अधिकारियों को, किसी सज्जेय अपराध के किए जाने से संबंधित इतिला अभिलिखित करने में उनकी असफलता के लिए दंड का उपबंध करने वाले उपयुक्त दांडिक उपबंध की आवश्यकता थी। आयोग ने भारतीय दंड संहिता में धारा 167क के अधिनियम के लिए सिफारिश की थी। सिफारिश की गई धारा का प्रारूप निम्नान्त था:

"167क. जो कोई, किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी होते हुए और विधि द्वारा अपेक्षित उसको रिपोर्ट की गई किसी सज्जेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इतिला अभिलिखित करने से इंकार करता है या किसी उचित कारण के बिना ऐसी इतिला अभिलिखित करने में असफल रहता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जितकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जूमने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा।"

उपर्युक्त दांडिक उपबंध यदि कार्यान्वयित किया जाता है तो पुलिस पर इसका विश्वाय रूप से भयोपराधी प्रभाव होगा और यह सज्जेय अपराधों के किए जाने से संबंधित इतिला रजिस्टर करने से इंकार करने की दुष्प्रथा को हतोत्ताहित या निवारित कर सकेगा। हम आयोग द्वारा उसकी 84वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश से पूर्णतः सहमत हैं और उसे पुनः दुहराते हैं।

8. 4 पुलिस और अन्य अधिकारियों द्वारा अन्वेषण

साधारणतः पुलिस की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के शरीर के विरुद्ध किसी अपराध से संबंधित परिवाद पुलिस अधिकारियों द्वारा शारीरी और सहकर्मी भास्तु के कारण अभिलिखित नहीं की जाती है। मृत व्यक्ति की पत्ती या उसके बालकों द्वारा या शिकायत व्यक्ति द्वारा इतिला या परिवाद की साधारणतः उपेक्षा की जाती है और चूंकि व्यक्तियों के ऐसे प्रवर्ण के पास कोई संसाधन नहीं हीते हैं अतः वे अपनी व्याधियों के परिवारण के लिए पुलिस अधीकार या न्यायालय तक पहुंच जाने की स्थिति में नहीं होते हैं। यदि वह पुलिस, जो नायरिकों का संरक्षण करती है, अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को यातना देने या उस पर हस्ता करने में विधि का अतिलिंगन करती है, और यदि उनके कृत्य के विरुद्ध परिवाद पुलिस द्वारा अभिलिखित नहीं किया जाता है तो प्रश्न यह उठता है कि किसी शिकायत व्यक्ति या उसके नातेदार के अभिरक्षण का अन्वेषण कैसे किया जाना है। ऐसी स्थिति में न्यायालय केंद्रीय आसूचना व्यूरो द्वारा भास्तु के अन्वेषण का निर्देश देने के लिए बाध्य होते हैं। उच्चतम न्यायालय³ ने प्रवर्तन महान्विदेशालय की अभिरक्षा में अधिकारियत मृत्यु के भास्तु में और दिल्ली उच्च न्यायालय⁴ ने पुलिस अभिरक्षा में अधिकारियत मृत्यु के भास्तु में, केन्द्रीय आसूचना व्यूरो के अन्वेषण करने का निदेश दिया था। अनेक रिपोर्ट किए गए विनियन्त्रण हैं जहां अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के अधिकारियों पर अन्वेषण किए जाने का निदेश दिया गया है। कुछ भास्तु में न्यायालयों ने, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में पुलिस की ज्यादती की जांच करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश जैसे न्यायिक अधिकारियों को नियुक्त किया है। ये ग्रन्तीएं अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से संबंधित अधिकारियों की जांच और उनका अन्वेषण करने के लिए एक स्वतंत्र अन्वेषण अधिकारण होने की वांछनीयता प्रदर्शित करती हैं।

3. संदर्भ सरविन्दर सिंह प्रोफर की मृत्यु, 1993 (1 क्रिया 163 (एस सी)

4. भारत न्यून बनाम राज्य (1986) क्रिया 1624 (दिल्ली)

हमारी प्रश्नावली की कुछ प्रतिक्रियाओं में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से संबंधित परिवादों का अन्वेषण करने के लिए पुलिस से भिन्न किसी स्वतंत्र अभिकरण के बनाए जाने का सुझाव दिया गया है। ऐसे विषयों में केन्द्रीय आसूचना व्यूरो को अन्वेषण सौंपने के भी मुक्काब दिए गए हैं। मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीशों के अभिकरण के भाष्यम से न्यायिक अधिकारियों द्वारा जांच करने का उपबंध करने के लिए भी और सुझाव दिए गए हैं जैसा न्यायालयों द्वारा अनेक भास्तु में किया गया है। इस तंग करने वाली दबस्ता परंपरा-पूर्वक विचार करने के पश्चात् हम सीखते हैं कि विचार के कारण, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के किए जाने से संबंधित परिवादों का अन्वेषण करने के प्रयोगः एक स्वतंत्र अभिकरण स्थापित करना संभव या शक्य नहीं हो सकता है। अतः हमारा यह भ्रंत है कि अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के किए जाने से संबंधित इतिला अभिलिखित करने की आवश्यकता पर पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारियों पर जोर देने के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चतर अधिकारियों के लिए आवश्यकता है और इस नीति को कार्यान्वयित करने के लिए तथा भूल करने वाले अधिकारियों के विशेष अनुसासनिक कार्रवाई करने के लिए प्रत्येक प्रशासनिक प्रयास किया जाना चाहिए। किन्तु यह प्रशासनिक व्यवस्था ही अपने अप वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति नहीं करेगी। हमारा विचार है कि विधि द्वारा अभिरक्षान्तर्गत हिस्सा के भास्तु में रजिस्टर करने से पुलिस की इकाई पर, जांच और भूल करने वाले पुलिस अधिकारियों के अधियोगः के लिए न्यायिक अधिकारियों के सम्बन्ध, याचिका फाइल करने के लिए उपबंध करना वांछनीय और उचित होगा। न्यायिक अधिकारियों द्वारा जांच पुलिस अधिकारी को पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के अधीन रखेगी और यह लोगों में विश्वास भी बढ़ाएगी।

8. 5 दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 154 को अंतःस्थापित करने के लिए सिफारिश

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अभिरक्षान्तर्गत अपराध की प्रक्रिया वाले अपराधों के अधिकारियों के त्वरित प्रभावी और स्वतंत्र अन्वेषण के लिए सर्वोच्च आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, एक विनिर्दिष्ट उपबंध अंतःस्थापित करने के लिए, जो ऐसा अन्वेषण सुनिश्चित करेगी, दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन किया जाना चाहिए। साथ ही साथ, हम कभी से कभी इस सम्बन्ध यह आवश्यक नहीं समझते कि इस प्रयोगः के लिए एक नए अभिकरण के सूजन के लिए सिफारिश करें। न्या अभिकरण विचार के कारण जैसा ऊपर कथित है, यह मानते हुए भी कि प्रशासनिक समस्याएं नहीं उठेंगी, शक्य नहीं हो सकेगा। हमारी परिकल्पना एक ऐसी प्रस्तावना की है जिसके अधीन किसी अभिरक्षान्तर्गत (सज्जेय) अपराध को रजिस्ट्री करने से पुलिस द्वारा इंकार करने पर, किसी ऐसे संसुचित न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा इकाराई होनी चाहिए जिसके प्रारंभिक जांच करने और किर (यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसी कार्रवाई होनी चाहिए) किसी सक्षम मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद फाइल करने का निदेश देने के लिए संशक्त होना चाहिए। समुचित न्यायिक प्राधिकारियों (अधिकारियत) अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु के भास्तु में सेशन न्यायालय और (अधिकारियत) अभिरक्षान्तर्गत अपराध, जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, के भास्तु में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट होगा। हम सिफारिश करते हैं कि उक्त आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में एक नई धारा 154क अंतःस्थापित की जाए। यह भी उपबंध किया जा सकता है कि सेशन न्यायालय या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (यथास्थित) यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी कार्रवाई होनी चाहिए तो किसी सचिवालीय अधिकारियों को, ऊपर यथा अधिकारियत परिवाद करने का निदेश दे सकता है।

अध्याय 9

मृत्यु की दशा में जांच और मृत्यु समीक्षा

9. 1 भूमिका

हम इस अध्याय में, संदेहास्पद मृत्यु के भागों में जांच और मृत्यु समीक्षाओं के बारे में वर्तमान विधिक ढांचे पर, अति संक्षेप में, विचार करने की प्रस्थापना करते हैं।

9. 2 पुलिस की भूमिका

इंड प्रक्रिया संहिता की द्वारा 174 द्वारा आत्महत्या, दुष्टांतना द्वारा मृत्यु अथवा ऐसी परिस्थिति में मृत्यु, जिससे उचित रूप से अपराध का संदेह होता है, के भागों में किसी आने का भारसाधक पुलिस अधिकारी या संगठित क्रिया गति कोई अन्य अधिकारी मृत्यु समीक्षा एवं बनाने के लिए संशोलनिक टैक्स कार्यपालक मणिस्ट्रेट को तथा की सूचना देता और उस स्थान पर जाकर अन्वेषण कर सकता। किंतु भागों में जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु अंतर्वित है और जहाँ मृत्यु के बाबत संदेह भी है, वहाँ संहिता की द्वारा 173 (3) में एक विशेष उपबंध है। द्वारा 175 पुलिस अधिकारी को साक्षी के रूप में व्यक्तियों की समन करने के लिए शक्ति प्रदान करती है।

9. 3 मणिस्ट्रेट द्वारा जांच

1993 में यथा संशोधित संहिता की द्वारा 176 (1), किसी मणिस्ट्रेट द्वारा, जहाँ किसी व्यक्ति की मृत्यु पुलिस की अभिरक्षा में रहते हुए हो जाती है, वहाँ भूत्यु के कारण की जांच, आज्ञापक बनाती है। हमारे लिए इस द्वारा द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया की, विस्तृत रूप में चर्चा करना आवश्यक नहीं है। तथापि, इस प्रकार की जांच साधारणतया एक अनौपचारिकता भाव होती है, और यह विश्वास नहीं पैदा करती क्योंकि जांच, किसी कार्यपालक मणिस्ट्रेट द्वारा की जाती है।

9. 4 मृत्यु समीक्षक

दलकर्ता और मुम्बई नगरों में, मृत्यु समीक्षक अधिनियम, 1871 लागू है और संदेहास्पद मृत्यु की दशाओं में मृत्यु समीक्षा, अधिनियम के अधीन नियुक्त किए गए मृत्यु समीक्षक या उसके डिप्टीयों द्वारा की जाती है।

9. 5 जांच आयोग

जहाँ किसी व्यक्ति की पुलिस अभिरक्षा में या अन्यथा संदेहास्पद परिस्थितियों में हुई मृत्यु, राज्य सरकार द्वारा जांच आयोग की नियुक्ति के लिए उचित विषय के रूप में मानी जाती है, वहाँ जांच आयोग अधिनियम 1952 के अधीन ऐसे आयोग के गठन के लिए आदेश किया जाता है।

9. 6 विशेष अधिनियम

विधिष्ट विषयों को लागू किये विशेष अधिनियमों में, रेल, विमान, वाणिज्य पोत परिवहन, आदि जैसे परिवहन में, वारित मृत्युओं की जांच के लिए उपबंध किए जा सकते हैं।

1. देखिए : संजीव रेड्डी नगर, पुलिस स्टेशन, हैदराबाद में 10-7-1986 को पुलिस अभिरक्षा में हुई श्री यू० नरसिंह की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, 28, आंध्र प्रदेश सरकार (1986); वी० नगर पुलिस स्टेशन, विजयवाडा में 17-9-1986 को हुई श्री टी० मुरलीधरन की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट आंध्र प्रदेश सरकार, 1987 येनेग्वरम पुलिस चौकी पर 26-8-1985 को हुई दाटुला संकुरिया की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, आंध्र प्रदेश सरकार, 1986; चृगृष्टी में पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए श्री मर्चेला अच्या की 6-9-1986 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, (आंध्र प्रदेश सरकार), एंड जी० नरसीनी “देश इन पुलिस कस्टडी”। 20 इकानामिक, एंड पोलिटिकल वीकली 1161 (1985), विशेष रिपोर्ट “आंध्र सेडिन्ट काप्स एंड लाकअप डेचेस”, जिल्डज, 5 नवंबर 1986 पृष्ठ 10, स्टेट्समैन, 15 और 16 अगस्त, 1994 में श्री शंकरसेन का लेख।

9. 7 रिट अधिकारिता

जहाँ कोई विषय उच्चतम न्यायालय या अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया जाता है, वहाँ, भूत्यु के कारण और उसकी परिस्थिति की जांच के लिए आदेश, उन न्यायालयों द्वारा उनकी संवैधानिक अधिकारिता के अधीन पारित किया जा सकता है।

9. 8 अधिकान्तर्गत मृत्यु

इस अध्याय में हमने जिन उपबंधों को संक्षेप में रूपरेखा प्रस्तुत की है वे विनिर्दिष्ट, अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु की समस्या पर कार्रवाई के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। इसी कारण हमने इस विषय पर विनिर्दिष्ट और पृथक् विकारिय की है जो अभिरक्षा के दौरान होने वाली अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु की दशा में सेशन न्यायाधीश द्वारा, या ऐसी शारीरिक घटियों की दशाओं में जिनका परिणाम मृत्यु नहीं है, मुख्य न्यायिक मणिस्ट्रेट द्वारा जांच पर विचार करती है।¹

में यातना या कारित सृत्यु नहीं आएगे। एक भास्मले में जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 270(1) (ऐसी ही भाषा में उल्लिखित) के अधीन उठाया, फेडरल कोर्ट ने, व्यायमूर्ति वरावचारियर के माध्यम से, निम्नवत् सप्रेक्षण किया था”¹

“मामलों के एक समूह में इस बात पर जोर दिया जाता है कि परिवाद किए गए कार्य की प्रकृति में कुछ ऐसा होना आवश्यक है जिससे उसे करने वाले व्यक्ति के पदीय चरित्र का कुछ संबंध हो। दूसरे समूह में, इन परिस्थितियों पर अधिक जोर दिया गया है कि अभियुक्त की पदीय प्रकृति या प्राप्तियां ने उसे अपराध करने का अवसर प्रदान किया था। भुजे ऐसा लगता है कि पहला ही सही दृष्टिकोण है। भास्मलों के तीसरे समूह में आय: अनन्य रूप से इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि वह ऐसा समय या जब अभियुक्त अपने पदीय कर्तव्य में लगा था कि अधिकारित अपराध किया गया कहा गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 (विशेष रूप से, 1923 में उसके संशोधन द्वारा पुरस्थापित हूप में) “जब वह अपने——” आदि पद के प्रयोग को इस दृष्टिकोण का कुछ समर्थक अभिनिधारित किया गया है। जब कि मैं, समय कारक के महत्व की उपेक्षा नहीं करना चाहता हूं, किंतु भी मुझे इसी को परोक्षा का साध्यम बना देना ठीक नहीं प्रतीत होता है। बहस के कथ में सुनाए गए एक दृष्टिकोण में, यदि किसी चिकित्सा अधिकारी पर, जब वह अस्पताल में अपने अर्तव्य पर हो, किसी शोगी के साथ बलात्कांड करने का, या किसी शोगी के शरीर से आभूषण चुरा लेने का आरोप लगाया जाता है, तब इस बात पर विश्वास कर पाना कठिन है कि विवायिका का आशय यह था कि उसे स्थानीय सरकार की पूर्व मंजूरी के सिवाय ऐसे अपराधों के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता था।”

संहिता की धारा 190 मजिस्ट्रेट को किसी अपराध को मंजून करने के लिए सशक्त करती है। धारा 197 में, धारा 190 में अधिकारित साधारण नियम का एक अपवाद अंतर्निहित है क्योंकि यह कर्तव्य मामलों में न्यायालय की सक्षमता और उसकी अधिकारिता के रोध विनियमित करती है। धारा का उद्देश्य और प्रयोजन, यह सुनिश्चित करना है कि लोक सेवकों और कर्मचारियों को उनके पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में कृत्य करते समय, अनावश्यक या तंग करने वाले अभियोजनों के अध्यधीन नहीं किया जाना चाहिए। अभियोजन, वरिष्ठ प्राविकारी को सुविचारित राय पर अनुज्ञा की गई मंजूरी के पश्चात् ही अनुज्ञेय है। उच्चतम न्यायालय² ने अभिनिधारित किया था कि किए गए अभिकारित अपराध में पदीय कर्तव्य के निर्वहन की कोई बात हो या किसी रीति में वह उससे सम्बद्ध अवश्य हो। धारा 197 के अधीन मंजूरी का प्रस्तुत तब तक नहीं उठ सकता जब तक कि परिवाद किया गया कार्य, अपराध न हो, अवधारित करने के लिए मात्र एक ही बात है कि क्या वह पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था। कार्य और पदीय कर्तव्य के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए। इस धारा पर विनिश्चित भास्मलों का प्राचुर्य है। हम वर्तमान प्रयोजन के लिए उनके प्रति कोई निर्देश करना आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, किसी भी न्यायालय ने यह दृष्टिकोण नहीं अपनाया है कि अभिरक्षात्मक अपराधों के लिए किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी आवश्यक है।

10. 4 यातना के भास्मले

यातना के प्रस्तुत पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार करते समय मद्रास के उस भास्मले के प्रति निर्देश किया जा सकता है जहां आरोप, भारतीय दंड संहिता की धारा 330 के अधीन लगाया गया था।³ उस भास्मले में, एक मजिस्ट्रेट ने, जिसे कर्तिपय अपराधों के संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में रखने की शक्ति की, एक ऐसे व्यक्ति की, जिसे उसने गिरफ्तार किया था, परिरोध में रखा था और उस व्यक्ति को अपराध की संम्बिकता के लिए बाध्य करने हेतु यातना दी थी। यह अभिनिधारित किया गया था कि ऐसी यातना देने में, उसका उसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करना तात्पर्य नहीं था और धारा 197 दंड प्रयोजन के अधीन मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी।

1. होरी राम सिंह बनाम इन्डियर ए आई आर 1937 एफ सी 43, 56, 40 क्रि. ला० ज० 468

2. प्रभाकर बनाम लिनारी, ए आई आर 1969 एस सी 686

3. गणपति गांडर बनाम इन्डियर, ए आई आर 1932 मद्रास 214, 215, 33 क्रि. ला० ज० 557

अभियोजन के लिए मंजूरी

10. 1 वर्तमान स्थिति

इस अध्याय में हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के एक महत्वपूर्ण उपर्युक्त धारा 197 पर विचार करेंगे जिसके अधीन लोक सेवकों के कार्तिपय प्रवर्गों को सशुद्धित सरकार की मंजूरी के बिना अभियोजित नहीं किया जाता था और वह है कि लोक सेवक द्वारा अपराध तब किया गया है “जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्य था।” यह सामान्यतः ज्ञात है कि कावाचार के लिए अभियोजित लोक सेवक, अभियोजन की रोक के लिए प्रयोग: इस धारा का आवश्यकता है कि व्यक्तियोंके द्वारा अपराध न्यायालय को प्रश्नगत अपराध के विचारण में उसकी अधिकारिता से वंचित करती है। “कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्य था” आदि शब्दों को अति संक्षिप्त नहीं पाया गया है। उन पर अत्यधिक निर्णय विधि एकत्र ही गई है, इनमें प्रचुर निर्णय विधि के हीते हुए भी, प्रत्येक समय जब लोक सेवक अभियोजित किया जाता है तब इस धारा के अधीन आवश्यक प्रयोग किया जाता है। साथसे, हमारा इस धारा के विभिन्न शाखा विस्तार में संबंध नहीं है। हमारे प्रयोजन के लिए इतना ही प्रश्न सुरक्षित है कि इस धारा द्वारा लोक सेवकोंकी द्विःशेष संरक्षण के द्विःशेषोंको, अभिरक्षात्मक अपराधोंकी वादता, किस प्रकार अपवर्जित किया जा सकता है। निरपवादतः धारा के उपर्युक्तोंका स्पष्टीकरण, अनिवार्यतः ऐसे अपराधोंतक ही परिसीमित नहीं रह सकता है।

10. 2 इतिवृत्त

यह समझना अति रोचक है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (वर्तमान संहिता की पूर्ववर्ती) की धारा 197 के तत्त्वानी शब्द (1923 में उस धारा के संशोधन के पूर्व) “ऐसे न्यायाधीश या लोक सेवक के रूप में किसी अपराध का दोषी” थे। इनसे विनिश्चयोंमें विरोध उत्पन्न हुआ था कि उन शब्दोंका कार्यक्षमता विस्तार कर्या था। एक सत व्यक्ति कि इन शब्दोंके अंतर्गत केवल वही सामले आते थे जहां अपराध ऐसा था कि अपराधी के लोक सेवक हेतु का तथ्य, वित्त में यथापरिभाषित अपराध का आवश्यक संघटक था, जब कि इसके प्रतिकूल सत भी व्यक्ति किया गया था। इस प्रकार, प्रथम सत के अनुसार, यदि किसी न्यायाधीश ने किसी भास्मले का विचारण करते हुए, मानहीनिकारक आवश्यक प्रयोग किया गया था तो 1898 की संहिता की धारा 197 लागू नहीं होती थी। इसी और, व्यापक भूमि के अनुसार धारा के अंतर्गत वे सभी भास्मले आ जाएंगे जहां अपराध का कुछ संबंध उसके पदीय कर्तव्य से था। 1923 के संशोधनकारी अधिनियम द्वारा “ऐसे न्यायाधीश या लोक सेवक के रूप में किसी अपराध का दोषी” शब्दोंके स्थान पर “जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्य था” शब्दोंके स्थान पर “जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्य था” शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे। न्यायालयोंने प्रायः इस संशोधन की धारा का विस्तार, व्यापक बनाने वाला माना था।

10. 3 संशोधन

अपर यथाकथित, 1923 के संशोधन के पश्चात् न्यायालय को प्रत्येक भास्मले में यह विनिश्चय करना पड़ता है कि क्या अपराध, पदीय कर्तव्योंके निर्वहन में कार्य करते समय किया गया था। वर्तमान प्रत्रम पर हमारी चित्ताकां प्रश्न यह है कि यथायह संनिश्चित करने के लिए धारा को संशोधन करने की आवश्यकता है कि धारा के अधीन मंजूरी की अपेक्षा का अभिवाकृ अभिरक्षा संबंधी अपराधोंके लिए किसी अधिकारी के अभियोजन के रोध के रूप में नहीं किया जाएगा। इस तथ्य पर विचार करने हुए कि प्रायः ऐसे प्रत्येक भास्मले में, जहां मंजूरी की आवश्यकी होती है, हम समझते हैं कि इस विभिन्न व्यष्टीकरण देना आवश्यक है। निरपवादतः ऐसे संशोधन के बिना भी, यह तर्क किया जा सकता है कि धारा की भाषा के अंतर्गत अभिरक्षा

1. नन्द लाल वरक बनाम एन० एफ० मिस्टर (1899) आई एस आर 26 क्र० 853, 961, 862

2. आर० पी० क्षेत्र बनाम चौ० दरवाद सिह (1963) क्र० ला० ज० 593

3. हेमेन्द्र नाथ गुप्त बनाम इन्डियर ए आई आर (1937) पटना 160, 162

यहां पर हम यह कह सकते हैं कि हमारी प्रश्नावली पर प्राप्त उत्तरों में, अधिकांश अधिकारियों और न्यायाधीशोंने तथा बहुत संघक पुलिस अधिकारियोंने भी यह विचार व्यक्त किया है कि ऐसे मामलों में मंजूरी, या तो आवश्यक नहीं है या अपेक्षित नहीं होनी चाहिए। (मद सं० ८)।

10. 5 स्वल्पीकरण सिफारिश के लिए अवश्यकता

सैद्धांतिक रूप से जोरदार शब्दों में यह तर्क दिया जा सकता है कि मत्यु या शारीरिक क्षति कारित करने वा लैंगिक अपराध करने जैसी प्रक्रिया के अभिरक्षान्तर्गत अपराधों का किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्यों से कोई संबंध नहीं है और धारा 197 उनको लागू नहीं हो सकती है। किन्तु (जैसा कि ऊपर कथित है) यह तथ्य ही, कि पहले धारा 197 के अवीन अधिक लेने के ऐसे प्रयात किए जा चुके हैं; और इस बात की भी गंभीर सांख्यिकी है कि अधिकारियोंने ऐसे प्रयात किए जाते रहे, स्पष्टीकारक संशोधन का औचित्यकारक प्रतीत होगा। लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के सफल अभियोजन के मार्ग में अनेक कठिनाइयों हैं और विचारण में ऐसे अपराधियों के प्रयासों को शून्य करने के अभियोजन के रूप में कार्यशील एक उपांग को अनुज्ञात करके उन कठिनाइयों में एक कठिनाई और जोड़ देना ठीक नहीं होगा। अतः हमारी सिफारिश यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197(1) के नीचे, निम्नलिखित स्वल्पीकरण जोड़ा जाना चाहिए।

“इन्होंने : शंकाओं के परिवर्जन के लिए, इसके द्वारा घोषित किया जाता है कि इस धारा के उपांग, किसी न्यायाधीश या किसी लोक सेवक द्वारा किए गए अपराध को, जो उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की बाबत किया गया भानव शरीर के विरुद्ध अपराध है, या किसी ऐसे अपराध को, जो प्राधिकार का दुष्प्रयोग गठित करता है, लागू नहीं होते हैं।”

साक्ष विधि

11. 1 भूमिका

प्रायः कहा जाता है कि तथ्य, विधि के नौ मुद्रे गठित करते हैं। दांडिक आभ्योजनों के मामलों में तो यह और भी सच है जहां न्यायालय में प्रौद्योगिक साक्ष देने वाले साक्षियों के माध्यम से साक्षणों का एक विश्वाल प्रपूज न्यायालय में आ जाता है, जो सिविल विचारण के मामले से पूर्णतः भिन्न है जहां दस्तावेजी साक्षण, कब्जे के साक्षण, लेखा-बहिर्भूतों में प्रविष्टियों, लोक अधिकारियों द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पदों वाणिज्यिक प्रथाओं, कुटुंब के सदस्यों के पास उपलब्ध ज्ञान और जानकारी इत्यादि के रूप में कुछ विश्वसनीय सामग्री ही उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त, किसी दांडिक विचारण में, कतिपय विशेष नियम लागू होते हैं। विशिष्टतया, न्यायिक व्यवहार के अनुसार, सूक्ष्य की प्रमाणात् या सापेक्षता: दांडिक विचारण में सबूत का मानक, सिविल वाद में जैसा अपेक्षित है, उससे उच्चतर होता है। इसके अतिरिक्त दांडिक अभियोजन की शक्ति के दुरुपयोग के वीर्यकालीन इतिहास ने विशेष विधि के अनेक देशों को, जिनमें भारत भी है, उनके लावधान में ऐसे व्यापक संरक्षण नियमित करने के लिए प्रेरित किया है जो सिविल वाद की अपेक्षा, दांडिक अभियोजन में अधिक बारबार प्रवर्तित होते हैं।

11. 2 यातना आदि के लिए अभियोजन

पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित, साक्ष की विधि के प्रतिनिर्देश से, किसी दांडिक आरोप के विशेष लक्षण वहां और अधिक स्पष्ट ही जाते हैं जहां अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के लिए किसी पुलिस अधिकारी को अभियोजित किया जाना है। व्यापक अर्थ में यदि इसका (धारा 101 से धारा 104 तक साक्ष अधिनियम) उल्लेख करें, तो अभियोजन को अपराधी का अपराध साक्षित करना चाहिए। यह समस्या उस विशिष्ट स्थिति के कारण अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के संदर्भ में प्रकाश में नाई जाती है जिसमें ऐसे अपराध प्रायः किए जाते हैं। वर्ष 1985 के एक निर्णय में¹ उच्चतम न्यायालय ने इस विधि की गंभीरता पर ध्यान दिया है। जिसके परिप्रेक्ष्य में विधि आयोग ने कतिपय स्थितियों में पुलिस अधिकारियों के अभियोजन पर एक पृथक् रिपोर्ट तैयार और अप्रेजित की है। यह मामला, पुलिस अभिरक्षा में एक संदिध्य व्यक्ति को यातना की अत्यधिक वीभत्त घटना से सम्बद्ध था जिसमें उस व्यक्ति की, उसकी गिरफ्तारी के लिए छह घंटे के भीतर मत्यु हो गई थी। जब गिरफ्तारी के दो घंटे के पश्चात् उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष लेश किया गया था, तब उसे बुरी तरह से क्षतिग्रस्त और गंभीर स्थिति में पापा गया था। वस्तुतः वह, मजिस्ट्रेट के कक्ष तक चल कर जा भी नहीं सका था, मजिस्ट्रेट को बाहर आना पड़ा था और न्यायालय कक्ष के बाहर आना पड़ा था। सेशन न्यायालय द्वारा कांस्टेबल को हत्या की कोर्ट में न आने वाले मानव वध के लिए (भारतीय दंड संहिता की धारा 304) सिद्धोष ठहराया गया था। मामला अपील के प्रायिक अधिकारीतंत्र से ही कर गुराया था जिससे हमारा कोई संबंध नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने ही स्थिति की अत्यधिक विलक्षण प्रकृति पर जोर दिया था जहां अन्य कोई नहीं अप्रिय माह वह पुलिस अधिकारी ही जिसकी अभिरक्षा में वह था, उन परिस्थितियों की बाबत साक्ष देने के लिए जिसमें उस व्यक्ति को अभिरक्षा में इतनी क्षति हुई थी इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति, जिन पर पुलिस थाने में पुलिस द्वारा अत्याचार किए जाते हैं, यह साक्षित करने के लिए किसी साक्षण के बिना (स्विध उनके अपने कथन के) रह जाते हैं कि अपराधी कौन है? इसी कारण न्यायालय ने ऐसे मामलों में सबूत के भार की विधि की पूनः परीक्षा करने के लिए कहा था। जैसा उपर उल्लिखित है, इस निर्णय के वश्वात् भारत के विधि आयोग ने अभिरक्षा में हड्डी क्षतियों के बारे में कार्रवाई के लिए एक विनियोजित सिफारिश की थी, जिसके संबंध में अगले पैरा में निर्देश करेंगे।

1. उत्तर प्रदेश राज्य वनाम राम सालेह यादव, ए आई आर 1985 ईसी 416

2. भारत का विधि आयोग, “पुलिस अभिरक्षा में क्षति” पर 113वीं रिपोर्ट

11. 3 विधि आयोग की सिफारिश (एक सौ तेहरबी रिपोर्ट)

पूर्ववर्ती पैरा में निर्दिष्ट उ० प्र० २० राज्य बनाम राम साहर यादव में निर्णय के पश्चात् भारत के विधि आयोग ने विधि के सर्वेक्षण के पश्चात्, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, १८७२ में, निम्नवत् एक नई धारा अन्तःस्थापित करने के लिए सिफारिश की थी :—

“ ११४ब. (१) किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के अभिकथित किसी कृत्य द्वारा गठित किसी अपराध के लिए किसी पुलिस अधिकारी के अभियोजन में, यदि वह साक्ष्य है कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि क्षति, उस व्यक्ति की अभिरक्षा रखने वाले पुलिस अधिकारी द्वारा उस अवधि के दौरान कारित की गई थी।

(२) न्यायालय को यह विनिश्चय करने में कि उपधारा (१) के अधीन उपधारणा की जानी चाहिए या नहीं, सभी सुसंगत परिस्थितियों का विशिष्टतः (क) अभिरक्षा की अवधि (ख) शिकार व्यक्ति द्वारा किए गए कथन का कि इसे किस ब्रकार क्षति हुई थी, जो साक्ष्य में ग्राह्य कथन होगा, (ग) किसी ऐसे निकितसा व्यवसायी के साक्ष्य का जिसने शिकार व्यक्ति की परीक्षा की हो, और (घ) किसी ऐसे अजिस्टेंट के साक्ष्य का जिसने शिकार व्यक्ति का बयान अभिलिखित किया हो या उसे अभिलिखित करने का प्रयास किया हो, अश्वय लेना होगा।”

11. 4 परवर्ती विनिश्चय

यह उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय के उत्तर निर्णय और विधि आयोग की उक्त अनुवर्ती सिफारिश के पश्चात् ऐसे मामलों में सदूत के भार का प्रश्न न्यायालयों के समक्ष कई बार आया। ऐसे मामलों में से एक मामले में^३ निम्नलिखित प्रेक्षण विद्यमान है :—

“ यदि कोई व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में है, तब उसके साथ जो कुछ हुआ है वह विशिष्टतया उन पुलिस अधिकारियों की जानकारी के भीतर हुआ है जिन्होंने उसे अभिरक्षा में लिया है। जब यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त विवादित दिलाने वाली साक्ष्य है कि मृतक की अभियुक्त द्वारा कारित क्षतियों के कारण मृत्यु हुई थी तब परिस्थितियों के बावजूद इसी अप्रतिरोध्य निष्कर्ष की ओर से जाएगी कि जिस पुलिस अधिकारी ने मृत्यु कारित की थी उसी ने शारीर का विलोपन भी कारित किया होगा।”

एक अन्य मामले में^४, जहां पुलिस अभिरक्षा में लिए गए शिकार व्यक्तियों को दूसरे दिन पुलिस चौकी के निकट एक स्थान पर मृत पाया गया था, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि यह भार राज्य पर था कि शिकार व्यक्ति को इस प्रकार की क्षति कैसे हुई जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी। सबूत के भार की बाबत नियम में परिवर्तन की आवश्यकता पर इस मामले में भी जोर दिया गया था।

11. 5 धारा ११४ के संशोधन के लिए सिफारिश

इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती पैराओं में अंतर्विष्ट सामग्री के परिप्रेक्ष्य में, हमारा यह संशोधन मत है कि विधि आयोग द्वारा उसकी ११३वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश का, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा ११४ब के अन्तःस्थापित द्वारा पालन किया जाना चाहिए और हम प्रबर्द्धन के रूप में दो बातें और जोड़ना चाहेंगे। प्रथम स्थान, उपबंध में विनिर्दिष्ट है: मृत्यु को जोड़ा जाना चाहिए हालांकि वह उस प्राप्त में विवर्कित है जिसकी सिफारिश पूर्ववर्ती रिपोर्ट में की गई थी। द्वितीयतः नई धारा के उपबंध, ऐसे प्रत्येक लोक सेवक को लागू किए जाने चाहिए जिनके पास विधि के अधीन किसी व्यक्ति की गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में निरुद्ध रखने की क्षति है। धारा का वास्तविक स्थानम्, हम प्राप्तपकार पर छोड़ते हैं। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि हमारी प्रश्नावली के उत्तर में, बहुसंख्यक लोगों ने ऐसी खंडनीय उपधारणा का पक्ष लिया है (मद सं० ४)।

३. भगवान सिंह बनाम धनबाल राज्य (१९९२) ३ एस सी सी २४९

४. नालीबता बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (१९९३) २ एस सी सी ७४६

11. 6 धारा २७, साक्ष्य अधिनियम

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, १८७२ में संस्थीकृति और विशिष्टतः वर्तमान प्रथोजन के लिए सुसंगत उपबंध उस अधिनियम की धारा २५, २६ और २७ में अंस्थिष्ट हैं। जब कि धारा २५ और धारा २६ किसी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी की गई संस्थीकृतियां या किसी व्यक्ति द्वारा जब वह अभिरक्षा में है, (पुलिस अधिकारी या अपर व्यक्ति को) की गई संस्थीकृतियां अपवर्जित करती हैं, जब कि धारा २७ उन मामलों की बाबत एक अपवाद का सृजन करती है जहां कोई संस्थीकृति, किसी तथ्य को पता लगाने की जानकारी के रूप में की गई है जो अभिरक्षा में किसी व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी है। इस धारा ने विवर्कन संबंधी अनेक समस्याएँ पैदा कर दी हैं जो सम्बन्धित, हमारी चिन्ह का विषय नहीं है। इस समय हमारा चिन्तन मुख्य रूप से इस सम्बद्ध है कि जिसका धारा २७, दुष्प्राप्त के अवलंब द्वारा दुरुपयोग का सृजन करती है :—

“ २७. अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साक्षित की जा सकेगी—परन्तु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता लगता है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्थीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी एतद्वारा पता लगे हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, सावित की जा सकेगी।”

यह धारा, चूंकि पूर्ववर्ती धारा या धाराओं द्वारा, किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा के दौरान की गई संस्थीकृतियों के संबंध में, अधिरोपित से अन्यथा प्रतिषेध के विरुद्ध एक बच निकलने वाला मान गठित करती है, वहां पर भी उसके उपबंधों का आश्रय लेने के लिए आवश्यित है जहां अभिरक्षा में व्यक्ति वस्तुतः स्वेच्छा या जानकारी नहीं प्रदान करता है। इसे यदि और स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो पूर्ववर्ती उपबंधों में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी नियम के कारण नहीं आ सकता, उसे धारा २७ में वे अनुब्रेय नियम या समर्थकारी उपबंध का आश्रय लेकर लाए जाने के लिए अपेक्षित होगा। यदि धारा २७ में बताई गई जानकारी स्वेच्छा प्राप्त नहीं हो रही है तो पुलिस उसे अन्य साधनोंद्वारा उपाप्त करने का अवलंब ले सकती है। कहने का आश्रय यह नहीं है कि हर मामले में जानकारी दिया जाना बाध्यकारी है। किन्तु यह बात सतत नहीं कही जा सकती कि धारा का मूल अस्तित्व ही (उस रूप में जिसमें वह अधिनियम में इस समय प्रतीत होती है) अवांछनीय या अवैध साधनों का आश्रय लेने की छाप या उक्तका सृजन करता है। जिससे कि धारा का उपयोग उन स्थितियों में किया जाए कि जो विद्यायिका द्वारा कभी भी आश्रित नहीं था। हमारा समाधान हो गया है कि धारा का, यदि निरसन नहीं किया जाता तो उपर लिखित समान को पूरी तरह समाप्त करने के त्रै में संशोधन आवश्यक है।

उस व्याप्ति से मुक्ति पाने के लिए दो साधन खुले हैं। धारा २७ को पूर्णतः निरसित किया जा सकता है और यह हमारा पहला अधिमान है। किन्तु यदि यह साधन ग्राह्य नहीं है तो न्यूनतम्, जो किया जा सकता है, वह धारा को पुनरीक्षित किया जाना है ताकि इसे इतना परिसीमित किया जा सके कि यह पता लगे तथ्य तक ग्राह्य रहे, और जानकारी के लिए नहीं। यह विकल्प, यद्यपि कुछ कम कठोर है, फिर भी एक सक्षित विश्लेषण प्रस्तुत किए जाने पर अधिक बोधगम्य बन जाएगा। विश्लेषण निम्नवत् है :—

- दार्ढिक विचारण, उन तथ्यों के सत्रूप से सम्बद्ध है जो विवादक हैं।
- यदि विवादक के तथ्य प्रत्यक्षतः सावित नहीं किए जा सकते तो विधि उन्हें, विधि द्वारा सुसंगत घोषित किया जाने वाले तथ्यों द्वारा सावित किए जाने के लिए अनुजात कर सकती है।
- यदि पता लगाने से सम्बद्ध कोई तथ्य, जैसे शिकार व्यक्ति के आयुष का पता लगाना बहुत, आदि का पता लगाना, या कोई अन्य सुसंगत तथ्य, उस व्यक्ति द्वारा दी गई तथा कथित जानकारी का परिणाम है तो विचारण की अपेक्षाएँ अभिलेख पर पता लगाने के तथ्य को लेकर (यह उपधारणा करके कि यह सुसंगत तथ्य है) संतुष्ट हो जाएगी।
- विधि को आगे बढ़ने और जानकारी के संस्थीकृति भाग को ग्राह्य मानने की जरूरत नहीं है। उपर कथित कारणों से संस्थीकृति भाग अधिकांशतः प्रवीड़न और यातना से निर्वधित कर दिया जाता है भले ही वह प्रत्यक्षतः न दिखलाई पड़ता हो।

(V) जानकारी बाला भाग, यदि यह संस्कृति के तुल्य नहीं है तो सिद्धांत रूप में यह अपर्याप्ति-जनक नहीं है किन्तु व्यवहार में, जानकारी तत्व और संस्कृति तत्व को एक-दूसरे से पृथक् रखना आसान नहीं है।

अतः धारा 27 का मात्र संशोधन (और इसके पूर्ण निरसन का नहीं) का मृदुतर विकल्प ही अपनाया जाना है। हमारी सिफारिश है कि धारा 27 को निम्नलिखित धारा द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए:—

“27. अभियुक्त को प्रेरणा पर तथ्यों का यथा चलना—जब किसी सुसंगत तथ्य का, किसी अपराध के अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप पता चलने का अभिसाध्य दिया जाता है, तो वे ऐसा व्यक्ति पुलिस अधिकारी की अधिरक्षा में हो या न हो, तब पता चले हुए तथ्य को सावित किया जा सकता है किन्तु जानकारी को नहीं, तब वह संस्कृति के तुल्य हो या न हो।”

11.7 अन्य अधिकारियों को धारा 25 और 26 के विस्तारण की सिफारिश

हमारा यह भी अभियात है कि साध्य अधिनियम की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी उपबंधों का, जो इस समय पुलिस अधिकारियों तक परिसीनित हैं, उन सभी लोक सेवकों पर विस्तार किया जाना चाहिए जिन्हें व्यक्तियों को गिरफतार करने और अधिरक्षा में निष्ठा करने की शक्ति है। यदि यह सिफारिश रवीकार की जाती है तो इसके अनुसरण में वह है कि अधिनियम की धारा 27 का (जब तक कि इसे हमारे पहले विकल्प के अनुसार निरसित नहीं कर दिया जाता है) विस्तार (पूर्ववर्ती पैरा में हमारी दूसरी वैकल्पिक सिफारिश के अनुसार अन्य विन्दुओं पर इसका संशोधन करने के पश्चात) ऐसे लोक सेवकों को भी किया जाना चाहिए।

12.1 शून्यिका

पूर्ववर्ती अध्यायों में से एक अध्याय जैसा उपर्युक्त किया गया है—तदनुसार अभिरक्षात्मक अपराधों की बाबत विधिक कारबाई, नियारक, अन्वेषणपरक, वाणिडक या उपचारात्मक ही सकती है। इस अध्याय में, हम अधिरक्षात्मक अपराध के विकार व्यक्ति या (उसकी मृत्यु की दशा में) उसके आवितों की दिए जाने वाले प्रतिकर के रूप में उपचार पर विचार करें।

12.2 साधारण विधि

साधारण विधि, प्राथमिकत: अपकृत्य विधि ही अदीन प्रतिकर उपचार है और इसका शिकार व्यक्ति की प्रेरणा पर, मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित करने वाले व्यक्ति की विरुद्ध तादा किया जा सकता है, परन्तु यह तब जबकि उस संबंध में लियल दायित्व की व्येषणां पूरी हो जाती है। मोटर यान अधिनियम, 1988, कर्बकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 और लोक वायित्व बीमा अधिनियम, 1991 जैसी कुछ विशेष अधिनियमितियों के अतिरिक्त यह विधि सुसंगत विधान द्वारा यथा उपायित या अनुदूरित अपकृत्य विधि के सिद्धांतों द्वारा आधारित रूप से शासित होता है। सदोष मृत्यु के मामले में, घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 ही वह अधिनियम है, जो साधारणतः लागू होता है। अधिनियम अनिवार्यत: उस संबंध में ही जिसे “सदोष मृत्यु” कहा जा सकता है, एक ऐसा पक्ष जो सुविधाजनक और संक्षिप्त व्यापक “सदोष कृत्य”, अपेक्षा या त्रृटि द्वारा व्यक्त किया जाता है। हमें वर्तमान प्रयोजन के लिए अधिनियम की वंतवैस्तु के अधीनों पर चर्चा करने की ज़रूरत नहीं है किन्तु यह नोट करना ही पर्याप्त होगा कि इस अधिनियम का दृष्ट प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 (1) (ग) में विस्तृदृष्ट रूप से निर्देश किया गया है।

12.3 अपकृत्य में प्रतिकर के लिए राज्य का वायित्व

भारत में अपकृत्य की साधारण विधि अर्थात् राज्य, साध्य और शुद्ध अंतःकरण के सिद्धांत पर भारत में यथा आयातित इतिहास का मान ल।, उसके कानूनी उपांत्यणों सहित विधि, प्रवर्तन में है। संविधान का अनुच्छेद 300, दंड और साध्य ही राज्य सरकार के विरुद्ध बाद फाल्ल करने के लिए उपबंध करता है अनुच्छेद के दूसरे भाग में, अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि विधान-पाल द्वारा ज्ञाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए राज्य अपने कार्यकलाप के संबंध में उसी प्रकार बाद ला लेकर या उस पर किसी प्रकार बाद लाया जा सके, जिस प्रकार यदि यह संविधान अधिनियमित न किया यथा होता तो तत्पानी प्राप्त बाद ला सकता या उस पर बाद लाया जा सकता था। हर प्रकार, यदि अपकृत्य में किसी सरकार के विरुद्ध बाद लाया जाना है, तो बाद लाया जा सकता है जब ऐसा दाद तत्पानी उपबंधों के अधीन, लाया जा सकता, यदि यह संविधान अधिनियमित किया यथा होता। अनुच्छेद अनुच्छेद करता है कि समुचित विधायिका इस बाबत विधि अधिनियमित करेगी। तथापि, विधायिका जे अनुच्छेद 300 के अधीन यथा अनुच्छेद कोई विधि नहीं बनाई है। प्रश्न यह है कि क्या अपकृत्य में नक्सानी के लिए सरकार, व्यथित नागरिक की प्रेरणा पर बाद लाए जाने के लिए दायी है, यह बात विधायी कृत्य की अविद्यानता के कारण असमंजस और भ्रम में बनी रहनी है। सामान्यतः कल्याणकारी राज्य में, अपकृत्य में नक्सानी के लिए बाद, व्यष्टि को भाति कारित करने वाले राज्य और उसके लोकों के विरुद्ध चलाने योग्य होता। चाहिए। किन्तु अनुच्छेद 300 द्वारा यथा अनुच्छेद, समुचित विधान के अभाव में, वायित्व वही रहता है जैसा यह संविधान के पूर्व विद्यमान था।

संविधान के पूर्व, इंग्लैण्ड के कामन ला का सिद्धांत कि राजा कोई गलती नहीं करता है और वह उपेक्षा या कदाचार के लिए दायी नहीं हो सकता, लियाजालवरूप वह अपने सेवकों की अपेक्षा या उनके कदाचार के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता था, प्रवर्तन में था। यह सिद्धांत इस आधार वाक्य पर आधारित था कि राज्य अपने शासकीय कृत्यों के प्रयोग में किसी व्यष्टि को कारित नुकसानी के लिए दायी नहीं था। तथापि, इंग्लैण्ड में यह विधिक स्थिति, तात्काल रूप से क्राउन प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1947 द्वारा परिवर्तित हो गई है। वहाँ विधि को उदार बनाया गया है और शासकीय तथा अशासकीय कृत्यों के बीच और

सरकारी था और सरकारी कृत्यों के बीच अब कोई विभेद, राज्य के दायित्व की अवधारणा करने के लिए प्रबलम नहीं रह जाता है। भारत में ऐसे ही कदम नहीं उठाए जाए थे। भारत के विधि आयोग ने अपकृत्य में राज्य के दायित्व के प्रश्न पर विचार किया था और वह सिफारिश की थी कि अनुच्छेद 300 के अद्वितीय नागरिकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए विधि अधिनियमित करना आवश्यक था। क्योंकि इंग्लैण्ड में भी काउन की उच्चक्रिया संस्कृतिक रूप से बदा दी गई थी।¹ विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि राज्य को उसके कर्मचारियों द्वारा, उनके नियोजन के क्षेत्र के भीतर कृत्य करते समय, अपकृत्यों के लिए, उत्तर-दायित्व द्वारा अधिरोपित देखभाल के कर्तव्यों की बाबत आयोग ने सिफारिश की थी कि यदि किसी परिनियम ने ऐसे कार्य का किया जाना आवश्यक लिया था, तो अपने आप में अलिङ्गकरण करता था, तो राज्य को दायी नहीं होना चाहिए किन्तु राज्य के उच्च पर या उसके कर्मचारियों पर अधिरोपित कानूनी कर्तव्य के भंग के लिए ऐसी उपेक्षा के सबूत के बिना दायी होना चाहिए जो नुकसान कारित कर सकता है। आयोग ने यह और सिफारिश की थी कि यदि राज्य या उसके कर्मचारी उस/उन पर अधिरोपित कानूनी कर्तव्यों के निर्वहन में उपेक्षापूर्वक या विवेषपूर्वक कार्य करते हैं और ऐसे कर्तव्य के प्रयोग में कोई विवेक अंतर्भूति है या नहीं, तो भी राज्य को दायी होना चाहिए। आयोग द्वारा की गई सिफारिशों, किरणी, अमी तक कार्यान्वित नहीं की गई हैं और सिफारिश की गई विधि अधिनियमित नहीं की गई है जिसका परिणाम पह है कि राज्य की उसके द्वारकों के उपकृत्यों के लिए दायित्व के प्रश्न पर पर्याप्त मात्रा में अनिवार्य की स्थिति बनी रही है। इन निमित्त आयोग की सिफारिशों को दीहराते हैं और सिफारिश करते हैं कि यथा सुझाई गई सुमंगल विधि अधिनियमित की जानी चाहिए।

12.4 अवकृत्य वायित्व के प्रश्न पर राज्य के व्यायिक विनियोग

विद्यार्थी पाकित के प्रयोग के अभाव में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय अपने न्यायिक नयाचारों द्वारा राज्य के लोक सेवकों के अपकृत्य के लिए राज्य के विरुद्ध नुकसानियों के अवार्द्ध किए हैं। उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाने श्रीमती विद्यावती^१ के शासने में उस सरकारी कार द्वारा कारित क्षति के लिए नुकसानी प्रदान की थी जो राजस्थान राज्य के कर्मचारी हारा उत्तरवेष्टन से और उपेक्षा-पूर्वक चलाई जा रही थी। उच्चतम न्यायालय ने राज्य के सेवकों द्वारा, उनके नियोजन के क्षेत्र के भीतर किए गए अपकृत्यों की बोकत नुकसानी का दायित्व अधिनिवृत्तिरूप किया था। विद्यावती के यामने में अपनाया गया दृष्टिकोण, यद्यपि बाद में कस्तुरी लाल के यामने में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था।

उस मासले के तथ्य यह थे कि बादी कस्तूरी लाल को फुलिस द्वारा चुराई गई सम्पत्ति के सदेह पर गिरफ्तार किया गया था। और बादी की गरीर की ललाशी लेकर काफी मात्रा में सोना अधिगृहीत किया गया और माल खाने में राह बढ़ा था। बादी ने अपनी निर्मुकित पर उसके अधिगृहीत सोने की बापसी के लिए दावा किया था किन्तु वह सोना इस आधार पर नहीं लौटाया। यह था कि हैडकांस्टेबल उससे अधिगृहीत सोने सहित गायब हो गया था। सोने की बापसी या बादी को कारित हानि के लिए नुकसानी के विकल्प हेतु बादी द्वारा राज्य के विहङ्ग बाद लाए जाने पर व्यायालय ने उसको डिक्री प्रदान की। अपील पर, उच्च न्यायालय ने डिक्री अवास्त कर दी। बादी ने उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने सावरेन उन्मुकित के सिद्धांत पर निर्भर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि चाकि अनुच्छेद 300 द्वारा यथाअनुधाद विधि अधिनियमित नहीं की गई थी अतः बाद राज्य की उन्मुकित के आधार पर उसके सेवकों के अपकूल्यों के लिए चलाने योग्य नहीं था। न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि सावरेन उन्मुकित के सिद्धांत का भारत में कामन ला के सिद्धांत के आधार पर अनुसरण किया गया है जो राज्य के विहङ्ग उसके सेवकों द्वारा किए गए अपकूल्यों के लिए दावों की बाबत इंग्लैण्ड में प्रचलन में थे। न्यायालय ने यह और अभिनिर्धारित किया कि यह उन्मुकित उन लुकासनियों की बाबत थी जो सेवकों के उपेक्षा या विदेषपूर्ण कृत्यों द्वारा कारित क्षति की परिणामिक थी यदि नियोजन सावरेन पावर को निर्देशनीय था। न्यायालय ने विधायी शक्ति का प्रयोग न किए जाने को निर्देशित किया और निम्नलिखित शब्दों में अपनी चिता व्यक्त की:—

1. “अपकृत्य मैं राज्य का दृष्टिक्षेप” पर भारत के विभिन्न आयोग की वहली रिपोर्ट।
 2. ए आई आर 1962 एस सी 993
 3. कल्पनी लाल बनाम उत्तर क्रिकेट राज्य, ए आई आर 1965 एस सी 1039

“इस अपील पर कार्रवाई करते समय हम इस विचार द्वारा विक्षुल्घ हो गए हैं कि उस नागरिक को जिसकी सम्पत्ति विधि की प्रक्रिया द्वारा अधिगृहीत की यई थी, जब उसने न्यायलय से इस आदार पर परित्योग की राम की कि उसको सम्पत्ति उसे वापस नहीं लौटाई गई है, यह बताया गया है कि वह राज्य के विशेष कोई दावा नहीं कर सकता है तब हम यह सोचते हैं कि यह विधि कि संतोषजनक स्थिति नहीं है। तथापि इस स्थिति को मुद्रारेक का उपाय विद्यार्थिका के हाथों में है।”

खैद है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्ति की गई चिन्ता और विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों दोनों पर ही ध्यान नहीं दिखा गया है क्योंकि अभी तक कोई भी विधि अधिनिवित नहीं की गई है। परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा कस्तूरी लाल के सामने में अधिकारित विधि ही इस क्षेत्र में विद्यमान है।

12.4 $\left(\frac{31}{32}\right)$ *

तथापि उच्चतम न्यायलय ने अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए याचिका करतियों को राज्य के सेवकों के अपकृत्य के विरुद्ध और उनके मूल अधिकारों के अतिरिक्तन के लिए प्रतिकार का सदाय करने के लिए राज्य के दावी होने के आधार पर भी नुकसानी प्रदान की है। विनिश्चित सामलों के सर्वेक्षण से यह पता लगेगा कि उच्चतम न्यायलय ने अपनी न्यायिक क्रियादिव भूमिका में लोक सेवकों द्वारा सत्ता के दुष्पर्योग के शिकार व्यक्तियों को परिवर्तन देने के लिए दो तरीके अपनाए हैं जो शिकार व्यक्तियों के लिए सुखद हैं, प्रतिकार के रूप में और राज्य को उसके सेवकों की उपेक्षा के लिए शास्ति के रूप में। हम इन सभी सामलों पर विस्तृत रूप में चर्चा करता आवश्यक नहीं समझते हैं तथापि उनमें से कुछ⁴⁻¹⁵ के प्रति एक संक्षिप्त निर्देश दिया जा सकता है। उच्च न्यायलयों ने भी संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रतिकर प्रदान किए हैं¹⁶⁻¹⁷ संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अनुसूतों मंजूर करने के अतिरिक्त, उच्चतम न्यायलय ने अनेक सामलों में राज्य के विरुद्ध गठित व्यक्ति को नुकसानी का दिया जाना ही अभिनिर्धारित किया है¹⁸⁻¹⁹।

नीलावती बेहरा बनासपुर उडीसा राज्य (1993, 2 एवं सी सी 476) में उच्चतम न्यायालय ने कस्तुरी लाल के मामले में किए गए अपने विनियोग को निर्देशित किया और यह संवेदन किया कि संवरेन उन्मुक्ति का सिद्धांत किसी घोक विधि के अधीन किसी दावे को लागू नहीं होता है और तदनुसार न्यायालय ने उडीसा राज्य को याची को अधिकान्तर्गत मृत्यु के आभले में नुकसानी का संदाय करने का निर्देश दिया क्योंकि राज्य ने संविधान के अनुच्छेद 21 का अनिवार्यत लिया था । न्यायालय ने संवेदन किया कि राज्य को क्षति पूरित किए जाने का और ऐसी कार्रवाई करने का जो विधि के अनुसार दोषकर्ता के विरुद्ध उपलभ्य हो सकता है अधिकार था । न्यायिक विनियोगों के संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह पता चलेगा कि यद्यपि तकनीकी रूप से कस्तुरी लाल का मायाला अभी भी इस क्षेत्र में विद्यमान है तिस पर भी न्यायालय व्यवित व्यक्तियों

- राजस्थान राज्य बनाम बिद्यालयों, ए आई आर 1962 एस सी 993
 - सरवासब पाटिल बनाम बैंसूर राज्य, ए आई आर 1977 एस सी 1749
 - नीलावती बेहरा बनाम उडीसा राज्य (1933) 2 एस सी सी 746
 - गुजरात राज्य बनाम सेम्म शेहम्बद हज्जी हुसेन, ए आई आर 1967 एस सी 188
 - शदल शाह बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1983 एस सी 1086।
 - सेवसतेत एवं खांगरे बनाम भारत संघ (1984) 1 एस सी सी 339
 - भीम रिंदु बनाम जम्मू कश्मीर राज्य 1989 अनु० एस सी सी 564
 - भीम रिंदु बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1985) 4 ए सी सी 677
 - सहेली बनाम पुलिस आयुक्त (1990) 1 एस सी सी 422
 - इन ही सरकारी सिंह ग्रोवर की मरु (1993) । 1 क्रियोला अरि० 163 (एस सी)
 - विं करमलम्ब बनाम आद्य प्रदेश राज्य, 1993 (1) एस सी ए एल ई 19
 - रेथीराम बनाम बुजरात राज्य 1993 (2) एस सी ए एल ई 631
 - रविकान्त बनाम पुलिस आयुक्त सहराराड़ राज्य, 1990 ए सी जे 1060
 - आर गंधी बनाम भारत संघ ए आई आर 1980 मद्रास 20
 - नलिनी आनोत बनाम पुलिस आयुक्त 1990 ए सी जे 345
 - सर बालद याटिल बनाम बैंसूर राज्य, ए आर आर 1997 एस सी 1749

को अनुतोष मंजूर करते रहे हैं किन्तु विधिक स्थिति स्थिर नहीं है अदः यह आवश्यक नहीं है कि सेवकों के अपकृतों के लिए राज्य के दायितों की बाबत कानूनी अधिनियमिति बनाई जाए।

12.5 प्रतिकर के दावा के लिए तंत्र

यह उपधारणा करते हुए कि अभिरक्षान्तर्गत वृत्त्यु में पारिणामिक कोई भी आचरण वा अभिरक्षान्तर्गत कोई अन्य अपराध गठित करने वाला आचरण अपकृत्य है, अपकृत्य विधि के अधीन तुकसानी का हकदार व्यक्ति साधारण प्रक्रिया के अधीन सक्षम सिविल न्यायालय में दायी व्यक्तियों के विरुद्ध सिविल ब्राव फाइल कर सकता है। वह प्रश्न कि “दायी व्यक्ति कौन हैं,” अपकृत्य विधि के सिद्धांतों के अनुसूच अवधारित किए जाने होंगे जो अन्य बातों के साथ-साथ, दायित्व की स्थिति (जिसमें भूल की अपेक्षा भी है), दायित्व से उन्मुक्त और सरकारी अभिकरणों के प्रतिनिधिक दायित्व जैसे धार्मतों के लिए सुरक्षित हैं। जैसा क्षर बताया गया है दिवियों की विशिष्ट किस्मों को लागू विशेष अधिनियमितियां अपकृत्य विधि में संबंधित विवादान साधारण नियम को सुदृढ़ या अनुपूर्ति कर सकेंगी।

12.6. संहिता की धारा 357

सिविल न्यायालय के तंत्र के अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 के उपबंधों का भी प्रयोग किया जा सकता है जिसके अधीन कोई दायित्व न्यायालय, कलिय परिस्थितियों में, सिद्धांद व्यक्ति द्वारा प्रतिकर के संदाय का आदेश कर सकता है।²⁰ ऐसा आदेश केवल वहीं पारित नहीं किया जा सकता जहां जुमनी अधिरोपित किया गया है [धारा 357 (1)] अपितु वहां भी किया जा सकता है जहां कोई अन्य दंड अधिरोपित किया गया है [धारा 357 (3)]

12.7 धारा 357क के अंतःस्थान की सिफारिश

हमारे अभिमत में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में प्रतिकर की बाबत विनिर्दिष्ट उपबंध रखने के लिए यह उचित होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 357क अंतःस्थापित की जाए, जिसका प्रारूप नीचे दिया जा रहा है। हमारा आशय विनिर्दिष्ट रूप से होषी अधिकारियों और सरकार के संयुक्त तथा पृथक् दायित्व के लिए उपबंध करना और प्रतिकर के निवारण में महत्वपूर्ण उपायों को गणना में लिए जाने के लिए अधिकारित किया जाना है तदनुसार हम निम्नलिखित धारा की सिफारिश करते हैं:—

“धारा 357क, दंड प्रक्रिया संहिता

अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में प्रतिकर

(1) धारा 357 के उपबंधों के होते हुए भी यहां न्यायालय किसी लोक सेवक को ऐसे अपराध के लिए सिद्धांद ठहराता है जिसका परिणाम मृत्यु या शारीरिक क्षति है और जो ऐसे लोक सेवक के विसी कृत्य द्वारा उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के विरुद्ध गठित अपराध है वहां इस धारा के उपबंध लागू होंगे।

(2) न्यायालय किसी ऐसे मामले में, जिसे यह धारा लागू होती है, निर्णय पारित करते समय आदेश देगा कि वह सरकार जिसके कार्यकलाप के संबंध में ऐसा लोक सेवक उस समय नियोजित था जब ऐसा कृत्य किया गया था ऐसे लोक सेवक के साथ संयुक्त: और पृथक्: प्रतिकर के रूप में ऐसी रकम का संदाय करने के लिए दायी होगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जा सकेगी।

(3) इस धारा के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए कोई आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा या सेसन न्यायालय द्वारा जब वहां पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, भी किया जा सकेगा।

(4) उक्ती विषय से संबंधित किसी पश्चात्कर्त्ता वाद में प्रतिकर प्रदान करते समय सिविल न्यायालय इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई किसी राशि को गणना में लेगा।

(5) इस धारा के अधीन प्रदान की गई रकम निम्नलिखित से कम नहीं होगी:—

- (क) शारीरिक क्षति जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, के मामले में 25,000 रुपए।
- (ख) मृत्यु के मामले में एक लाख रुपए।

(6) इस धारा के अधीन प्रतिकर की रकम विशिष्ट नामे में व्यापार्य, उपधारा (5) के अधीन रहते हुए, सभी सुसंगत परिस्थितियों को जिसके अंतर्गत विवरित हैं परिस्थितियों भी हैं (किन्तु जो अनिवार्यतः उन्हीं तक सीमित नहीं हैं) गणना में लेगा:

- (क) शिकार व्यक्ति द्वारा भोगी गई क्षतियों की रकम और गंभीरता;
- (ख) शिकार व्यक्ति द्वारा भोगी यथा सामाजिक संदर्भ;
- (ग) शिकार व्यक्ति के उपचार और पुनर्जीव पर उपलब्ध या उपलब्ध होने के लिए संभाव्य व्यय;
- (घ) शिकार व्यक्ति की दास्तावित उपायें धक्काता तथा प्रतिकर के हकदार व्यक्तियों और बुटुंब के अन्य सदस्यों पर उसकी हानि का अवार;
- (ङ) वह सीना, घदि कोई है जिसे तक शिकार व्यक्ति स्वयं क्षति के लिए जिम्मेदार था;
- (च) मामले के अभियोजन में उपलब्ध खर्च।

(7) शिकार व्यक्ति की मृत्यु या उसकी स्थायी निःशक्तता की दशा में, व्यापार्य शिकार व्यक्ति के अनुभावित वार्षिक आय को, जो उसके अनुभावित जीवन काल के वर्षों को संख्या से गुणा करके अभिप्राप्त की जाए, गणना में ले सकेगा।

(8) कार्यवाही के अंतिम अवधारण के लिये रहते हुए न्यायालय अंतरिम अनुतोष के रूप में ऐसे प्रतिकर का अवार्ड कर सकता जो वह मामले के विसी प्रक्रम पर, सिद्धांद का निर्णय पारित किए जाने पर भी मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

(9) सरकार अपकारी लोक सेवक से उसके द्वारा प्रतिकर के रूप में इस धारा के अधीन संदर्भ कोई रकम, पूर्णतः या भागी, जैसा भी वह ठीक समझे, वसूल कर सकेगी।”

हात के बर्पों में पुलिस की विशेष रूप से चिकित्सा और अत्यधिक दंगे, राजनीतिक अशांति, छात्र आंदोलन, आतंकवादी क्रियाकलाप अतिकारियों और अन्यों के बीच अत्यधिक राजनीतिकरण, धूस और अष्टाचार जैसे सफेदपोश अपराधों को बढ़ाती हुई संख्या, करापक्चन, राजकोषीय विधियों के उल्लंघन तस्करी आदि की दृष्टि से कठिन और संवेदनशील कार्य करना पड़ता है। संगठित अपराधी गिरोहों ने सभाज में मजबूत जड़ जमा लिया है। ऐसे आपराधिक गिरोह अत्यधिक आमुदों, विवरांसकों और अन्य युक्तियों वा प्रयोग करके वास्तविकता को इस कदर नष्ट कर देते हैं और अपराध के स्थान पर अत्यन्त धा कोई साक्ष नहीं रह जाता। इस प्रकार सशस्त्र और आतंकवादी समूहों से निपटना भी परंपरागत अपराधियों के विपरीत से बहुत भिन्न है। इस प्रवर्ग के अपराधी, अतिप्रशासकत, दृढ़ तथा अत्यधिक आमुदों से जैस हाते हैं। एक सामाजिक पुलिस बाला जा एक छाठी लाठा (रुलर) या चाहे बंदूक हो लेकर चलता ही आतंकवादियों को तीक्ष्ण नारि वा मुद्राबला नहीं कर सकता। क्रियाकलापों और उत्तर-दायित्वों का दायरा बढ़ जाने से पुलिस ऐसी बुनाईयों और संकटों से विर भाई है जिससे अनेक नई और महसूर रूप समव्याप्त पैदा हा जाती हैं जिसके लिए उन्हें प्रशिक्षित और सज्जित नहीं किया गया है, अतः लोगों को संविधान और भागीदार जनदंडों के अनुसार सेवा करने में असफल हो जाते हैं।

पूर्वोक्त वातों के अतिरिक्त विधि और व्यवस्था, अतिमहत्वपूर्ण अविक्षियों की इयूटी से संबंधित अत्यधित दबाव और घोर परिव्रक्त तथा इयूटी की लंबाई अवधि से पुलिस के पास अपराधों का पता लगाने के लिए, भास्मों के अन्वेषण करने के लिए अवस्था समझ रह जाता है। पुलिस उन्हें सौंपे मए कावों के कोटा के दबाव के अवीनशीष परिणाम प्राप्त करने की इच्छा से सालिज, धैर्य, अल्पभाषित और बैरानिक पूछताछ का रास्ता छोड़ देते हैं बल्कि वे संदेहात्मक अविक्षियकता का विविध प्रकार के शारीरिक बल द्वारा दबाव डालते हैं कि वह उन्हें सभी जात तथ्यों को प्रकट कर दें। यद्यपि विधि पुलिस द्वारा अपनी इयूटी के अनुपालन में कुछ विशिष्ट अवसरों पर जैसे उपद्रवी भीड़ को तिदर वितर करने वा उपद्रवी दुष्कार्य करने वाले को गिरफ्तार करने में जो गिरफ्तारों से बचने का प्रभास करेगा, बल व्रयोग को अवश्यकता को मान्यता देती है, किन्तु वे अपनी अधिकारी में के व्यक्तियों के विश्वद बदल प्रयोग करते हैं।

अध्याय 13

पुलिस का संगठन

13. 1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हमने पुलिस और अन्य लोक अधिकारियों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग से उद्भूत होने वाले अभिरक्षान्तर्भूत अपराधों के विभिन्न पहलुओं की चर्चा बीमार है। पुलिस कठघरे में हैं, दिन प्रतिदिन इसे बढ़ते हुए, ये भी और लोक आलीचना का द्वापता करना पड़ रहा है। अक्षरता, श्रावाचार, निष्ठरता, सानव अधिकारी के उल्लंघन, सांकेतिकता, विधिविरुद्ध और पक्षपात्र पूर्ण व्यवहार के अभिरक्षन अक्षर पुलिस के विरुद्ध लिए जाते हैं। किन्तु किसी को यह भरना लहीं रखनी चाहिए कि सभी पुलिस वाले “खून के पास कुत्ते हैं”। पुलिस एक अनिवार्य संगठन है जो विधि और व्यवस्था बनाए रखने तथा अपराधों के निवारण के लिए कार्यपालिका का एक भाग है। पुलिस सच्च समाज के लिए एक आवश्यकता है। नागरिक, सुरक्षा और संरक्षण के लिए पुलिस की ओर देखते हैं और इसने समाज की भरपूर सेवा की है। भारत में पुलिस जनना की सेवा में अपनी प्रभावी भूमिका निभाने में सर्वथ नहीं रही है। इस अध्याय में पुलिस संगठन से संबंधित कुछ विषयों पर चर्चा करने का प्रस्ताव है। यद्यपि यह रिपोर्ट पुलिस बल के संगठन के संबंध में नहीं है जिन्हें हम कुछ बातों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं जो अपराधों के अन्वेषण से संबंधित अनाचार के लिए जिम्मेदार हैं क्योंकि हमारी राय में जब तक उन बातों का निराकरण नहीं किया जाता है तब तक संपूर्ण पुलिस इस व्याधि से पीड़ित रहेगी और उसके लिए अपने को लोगों की सेवा के उपकरण के रूप में बदलना चाहिए होगा।

13.2 जिटिंग शासन के अधीन पुलिस की भूमिका

भारत में बर्तमान पुलिस प्रणाली ब्रिटिश से उत्तराधिकार में मिली है। यह ब्रिटिश सरकार द्वारा सूचित की गई है और दक्षता तथा देश के विधि के प्रति अधीनता के मूलभूत आदर्श पर आधारित है। ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस की भूमिका पुलिस अधिनियम, 1861 द्वारा प्रतिष्ठापित भूमिका तक सीमित थी। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पुलिस को उपराष्ट्र के नियामन और पता लगाने के लिए दक्ष उपकरण बनाना और इसे विदेशी सरकार के अधीन ऐसे प्रभावी हथियार के रूप में उपयोग करना था जो उसके प्राधिकार को किसी भी चुनौती को सख्ती से दबा दे। उनकी सोच लोक सेवानुसुध नहीं थी बल्कि उनका शासन, यथास्थिति, बनाए रखना था। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस की तत्कालीन शासकों के कहने पर स्वतंत्रता संभाषण में लोग हँगारे अपने लोगों के विरुद्ध प्रभावी दम्भात्मक उपाय करने पड़ते थे जिसके परिणामस्वरूप पुलिस की छवि अत्यधिक विकृत हो गई और वह अत्याचारी तथा दम्भात्मक के रूप में पहचानी जाने लगी।

13.3 स्वतंत्रता के पश्चात् पुणिस की भूमिका

भारत के सदर्तंत्र हाँ जाने के पश्चात् भारत ने अपने को गणतंत्र घोषित किया। वह पुलिस राज्य नहीं रह गया बल्कि वह कल्याणकारी राज्य ही गया। संविधान ने नागरिकों को मूल अधिकारों की गारंटी दी और उसने नए विवाहों, विंशेष विधियों वित्तियत उचाव तथा प्रयोगशील विधि सुधारों का अधिनियमन भी किया। इन अधिकार विधियों के कार्यविधान और प्रवर्तन का कार्य पुलिस को सौंपा गया। अनेक विधियों में जिनके अंतर्गत आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, भारत रक्षा अधिनियम, आतंकवादी और विद्वान्सक क्रियाकाल अधिनियम जैसे अनुयाय हैं पुलिस को व्यापक वैकालिक शक्तियाँ दी गई हैं। इन शक्तियों का प्रयोग मूल अधिकारों के अनुरूप तथा कानूनी उपबंधों के अनुसार किया जाना है। दुर्भाग्यवश पुलिस को नई चुनौतीं वा सामना करने के लिए पुनर्भूठित नहीं किया गया, वही भर्ती नीति, प्रशिक्षण और पदात्मक नियंत्रण जो त्रिटिय दशल में अपनाया गया था मूलरूप में आज भी प्रवृत्त है जिसके परिणामस्वरूप पुलिस समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं है।

13.4 पुलिस आयोग की विवेदिका

भारतीय पुलिस आज अपने को न केवल संवेदा जल में जलिक अपने पर्याप्त अंतः संरक्षनात्मक सुविधाओं जैसे आवृत्तिक आवृद्ध, उपहार, संचार तंत्र और अधिक भवित्वपूर्ण रूप में जावश्वकता आवारित प्रशिक्षण में भी इसको विविध प्रवर्तन का दब्क और प्रभागी उपहारण बनाने के लिए परमावश्वक है, अपने को निःशक्त पाता है, राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस प्रशासन की संवेदा ओं के सभी पहलुओं पर विचार किया है और इसने पुनित्र तंत्रात् में सुधार के लिए अनेक विपार्द्ध दी है, पुलिस आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट (जनवरी, 1980) में इस पुलिस कार्य संपादन में सहायता के लिए, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करके अन्वेषण का पद्धति को जावृनिक बनाने की जावश्वकता पर जोर दिया है। इसने संचार, परिवहन, कंप्यूटरीकृत अध्ययन और ज्ञानावलय संबंधी विज्ञान से सहायता के लिए उन्नत सुविधा के लिए भी सिफारिश की है। सिफारिशों में अधिक केन्द्रीय ज्ञानावलय विज्ञान प्रयोगशालाएं और चिकित्सीय धरीक्षण प्रयोगशालाओं, राज्य हस्तालिपि ब्यूरों और प्रावेशिक प्रयोगशालाओं की स्थापना पर जोर दिया है जिससे कि राज्य के सामान्य आपराधिक कार्य में अक्षर उद्भूत होने वाले विशेष ब्रकार के मामलों को निपटाया जा सके। इसके केन्द्रीय अन्वेषण के प्रभागी गठन को सिफारिश की है, पुलिस आयोग ने सिफारिश की है कि प्रशिक्षण और अधिक वैज्ञानिक होना चाहिए अपने एक और रिपोर्ट द्वारा आयोग ने प्रशासनिक परिवर्तन करके पुलिस की प्रभाविकता और दब्का में सुधार के लिए अनेक सिफारिशों की है। पुलिस आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को पूर्णतया कार्यान्वित नहीं किया गया है। हासारों राथ में, यदि पुलिस आयोग को रिपोर्ट कार्यान्वित कर दी जाती है तो पुलिस में विधानसभा के द्वारणों को कामों हृदतक दूर किया जा सकेगा और शक्तिः तथा अभिरक्षा में के व्यक्तियों पर असरात्मक दुर्बलीयों के अवसर करने हो जाएंगे।

13.5 अन्वेषण छंड को त्रिधि और व्यवस्था छंड से प्रथक करने की आवश्यकता

भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित पुलिस बल से संबंधित अधिनियमितियां चाहे वह पुलिस अधिनियम, 1861 हों या पुलिस जातित करने वाले ग्रामीण अधिनियम अथवा राज्य अधिनियम हों, पुलिस बल के लिए मध्य रूप से कम से कम दो प्रमुख कार्याधार में रखते हैं। पहला कार्य है विधि और अवस्था

बनाए रखना जबकि दूसरा कार्य है अपराधों का विशेष रूप से संज्ञेय अपराधों या अन्वेषण करना। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जब अन्वेषण करने वाले अपराधों की दर कमी नहीं थी और तत्कालीन शासकों द्वारा शासित क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं था, उस समय इन क्षेत्रों की रखने की आवश्यकता नहीं थी। अब विधिंशु बदल गई है और हमें ऐसा जरूरी होता है कि पुलिस के कुत्यों के विरुद्ध में दक्षता और सत्यानिष्ठा दोनों कुत्यों के पृथक्करण की स्कीम आरंभ किए बिना युक्तिमुक्त स्तर तक नहीं रखी जा सकती। यद्यपि इससे यह पूर्व अधिकारण बनती है कि प्रत्येक राज्य में पुलिस करने की संख्या और संभठन की पुनर्निर्मित करना पड़ेगा। ऐसा विषय है जिस पर हमारा विस्तार से चर्चा करने वाला प्रस्ताव नहीं है। किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि ऐसा परिवर्तन विभिन्न दृष्टिकोणों से आवश्यक है।

13. 6 पुलिस लंगठन से संबंधित सिफारिशें

हमारी यह राय है कि अपराधों के अन्वेषण के प्रक्रम में उत्कीड़न और आनाचार की समस्या को कम हुद तक इस तथ्य से होती है कि पुलिस अधिकारी जो व्यवहार की व्यवस्था में व्यस्त रहे जाते हैं, उनके पास अपराधों के अन्वेषण के लिए न तो समय रहता है और वे अपने सर्वोत्तम बोर्डिंग और शारीरिक संसाधन समर्पित करने का सम्भावना नहीं रख सकते हैं। परिषट्क की व्यवस्था जो अन्वेषण के समय भूमिका निभाने में प्रयोग की जानी चाहिए, उससे निम्न इतरी है जो लोअल अवधारणा के भूमि की तात्कालिक स्थिति से निपटने के लिए प्रयुक्त की जानी होती है। यह चालनाय है कि अपराधों के अन्वेषण के लिए पृथक् बंड ही जिसमें आवश्यक विशेषज्ञता और सूखबूझ के ऐसे अधिकारी रहे जाएं जो संज्ञेय अपराधों का पता लगाने और अन्वेषण करने में पूर्ण व्यक्तिक ऊर्जा लगा सकें। इनें पता है कि यह नई सोच नहीं है। हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि इसे तरतीव से अवश्य नहीं लगाया जा सकता। इसके अतिरिक्त (संबंधीय विधिक विधियों को छोड़कर) इसे राज्य सरकारों द्वारा ही ठोस रूप दिया जा सकता है किंतु भी हम इस संबंध में अपना दृष्टिकोण पुनः दुरहाते हैं जिससे कि वैयक्तिक स्वर्गता और अन्य सूख अधिकारीों का उद्देश्य केवल शासकीय निष्ठेद्धता या अकर्मणता से दुष्प्रभावित न हो। स्कीम के कारण आरंभ में थोड़ा बहुत अतिरिक्त व्यय करना पड़ सकता है। किन्तु कालांतर में इससे न केवल समय और दौहरे कार्य से बचत होगी, बल्कि धन की भी बचत होगी। यदि इस संबंध में कोई कार्य अवधारणा लिए जाने हैं तो उसे किया जा सकता है। उन राज्यों के, जिनमें ऐसी स्कीम अन्वेषण के अपनाएं जा चुकी हैं, अनुसवर्णों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। किन्तु उसी समय इस विचार को प्रारंभ में अटक नहीं देना चाहिए। क्योंकि इसे अपनाने से एक ऐसी समस्या के हल के लिए काफी हुद तक योगदान कर सकता है जिसने काफी समय से व्यक्तियों को चक्रवात दिया है और जो यूक्तिपूर्क समय में तब तक, लगातार नहीं होनी चाहे तक कि अनेक मोर्चों पर उससे न निपटा जाएगा।

आयोग महसूस करता है कि पुलिस के कार्यकरण में सुधार लाने के लिए तत्काल उपाय किए जाने चाहिए। तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि निम्नलिखित उपाय किए जाएः—

- अन्वेषण अभियान को विधि प्रबंधन बंड से पृथक् किया जाना चाहिए।
- अन्वेषण अभियान को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से आपराधिक और आधिकारिक विधियों के ग्रन्तिकारक और दाँड़िक उपर्योगों की गहरी जनकारी हो जाए और उन्हें आधुनिक परिषट्क युक्तियों और उपकरणों में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम में इस बात पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए जिसमें पुलिस बलों से यह अपेक्षा की जाए कि वे अपने कर्तव्य पालन में संविधान और मानव अधिकार तथा देश की विधियों का सम्बन्ध लाने के लिए अभिनव
- पुलिस को अन्वेषण में तट विकास और तकनीक की जानकारी देने के लिए अभिनव और पुनर्नव्याय पाठ्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

अध्याय 14

सिफारिशें

14. 1 इस रिपोर्ट के पूर्वतर अध्यायों में जो चर्चा की गई है उसके प्रणाली में आयोग की यह राय है कि लोक सेवकों द्वारा अभियान से प्रयोग इन सभी अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों के हित के संरक्षण के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में उन्नुसार उन्नत व्यवस्था वाला अव्यावश्यक है। कुंभम अधिनियमितियों में प्रस्तावित संशोधनों के बारे में इस रिपोर्ट के पूर्वतर अध्यायों में पढ़ते हो चर्चा की जा चुकी है किन्तु सुविधा के लिए प्रस्तावित संशोधनों का प्रारूप इसमें इसके पश्चात् दिया जा रहा है।

भारतीय दंड संहिता

14. 2 विधि आयोग “अभियान में महिलाएं” पर 135वीं रिपोर्ट में की गई पूर्वतर सिफारिशों को पुनः शाठराता है। हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 को धारा 160 के उल्लंघन के बारे में दंडित करने के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 में एक नई धारा 166 के अंतःस्थापित की जाएः—

“166 क. जो कोई लोक सेवक होते हुए—

(क) विधि के लिए ऐसे नियम जो जिसमें उपर्योगी अपराध या अन्य विषय में अन्वेषण के प्रयोजन के लिए नियमित की अपेक्षा करने से प्रतिषिद्ध किया गया है, जान-बूझकर अवश्य करेगा, वा

(ख) विधि के लिए अन्य नियम की जिसमें ऐसी रीति विनियमित की गई है जिसमें वह ऐसा अन्वेषण करेगा, किसी व्यक्ति के प्रतिकूल करने के लिए जानबूझकर अवश्य करेगा, तो वह कारबाह से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुमनि से या दोनों से दंडित किया जाएगा।”

प्रस्तावित अपराध संबंध, जमानतीय और किसी अनिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय होना चाहिए।

(पैरा 6. 5)

14. 3 आयोग भारतीय दंड संहिता, 1860 में धारा 167 के अंतःस्थापित करने की आवश्यकता पुनः दुरहाता है जैसी कि उसने बलात्संग और सहबद्ध अपराध तथा विधि, प्रतिक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न (पैरा 3. 3) पर जानी 84वीं रिपोर्ट में सिफारिश की थी। वह धारा इस रूप में होगी:—

“167 क. जो कोई किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी होते हुए और विधि द्वारा अपेक्षित होते हुए उसका रिपोर्ट किए गए किसी संज्ञेय अपराध होने से संबंधित कोई जानकारी अभिलिखित करने से इन्हाँ जारी है या उन्हिं कारण के लिए अवश्यक विनियमित किया गया है तो वह वह दोनों में से किसी प्रकार के विवरण से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुमनि से या दोनों से दंडित होगा।”

(पैरा 8. 3)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

14. 4 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41(1) का संशोधन किया जाए और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 41(1क) अंतःस्थापित की जाए, जो निम्न रूप में होगी:—

59
95-M/JD127MofLJ&CA-5

“41. (1क) : पुलिस अधिकारी का जो इस धारा की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करता है निम्नलिखित बातों के संबंध में युक्तियुक्त रूप से समाधान होना चाहिए और ऐसे समाधान को अभिलिखित करना चाहिए :—

- (क) उस खंड ने निर्दिष्ट परिवाद, जानकारी वा संदेह न केवल इस बाबत है कि कोई संज्ञय अपराध किया गया है वल्कि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति उसमें सहअपराधिता की बात भी है;
- (ख) गिरफ्तारी इस दृष्टि से आवश्यक है कि गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के आवागमन पर रोक लगाई जाए जिससे कि जनता में सुरक्षा की भावना बढ़े या गिरफ्तार किए जाने वाले को विधि की प्रतिक्रिया से बचने को निवारित किया जा सके या उसे उसी प्रकार का अपराध करने या साधारणतया उपद्रवी व्यवहार में लिप्त रहने से बिरत किया जा सके।”

(पैरा 5.20)

14.5 वह और सिफारिश की जाती है कि भारत के विधि आयोग द्वारा 135वीं रिपोर्ट (अभिरक्षा महिलाएं) में की गई सिफारिश सं० 1 और 2 जो महिलाओं की गिरफ्तारी से संबंधित है, कार्यान्वयन की जाए।

(पैरा 5.17)

14.6 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 41क निम्नलिखित रूप में अंतःस्थापित की जाए :—

“41क. उपसंजात होने की सूचना—जहाँ मामला धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) के अन्तर्गत आता है, पुलिस अधिकारी संबंधित व्यक्तियों को गिरफ्तार करने की वजाय उसे उपसंजात होने की सूचना जारी कर सकता है, जिसमें उससे यह अपेक्षा की गई हो कि वह सूचना जारी करने वाले पुलिस अधिकारी के समक्ष या किसी ऐसे स्थान पर उपसंजात हो जो सूचना में विनिर्दिष्ट की जाए और धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट अपराध के अन्वेषण में पुलिस अधिकारी के साथ सहयोग करे।

(2) जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसी सूचना जारी की जाती है तो वह उस व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह सूचना के निवंधनों का पालन करे।

(3) जहाँ ऐसा व्यक्ति सूचना का पालन करता है तथा करता रहा है तब वह सूचना में निर्दिष्ट अपराध की बाबत तब तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा जब तक कि लेखदृढ़ किए जाने वाले कारणों से पुलिस अधिकारी की राय नहीं है कि उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए।

(4) जहाँ ऐसा व्यक्ति किसी समय सूचना के निवंधनों का अनुपालन करने में असफल रहता है, वहाँ पुलिस अधिकारी के लिए सूचना में उल्लिखित अपराध के लिए ऐसे अदेश के अधीन रहते हुए जो सक्रम न्यायालय द्वारा इस निमित्त पारित किया गया है, उसे गिरफ्तार करना विधिपूर्ण होगा।”

(पैरा 5.21)

14.7 आयोग का यह दृष्टिकोण है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 50 के पश्चात् एक नई धारा 50क निम्नलिखित के रूप में अंतःस्थापित किए जाने की आवश्यकता है :—

- 50क. (1) जब भी कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किया जाता है, तब पुलिस अधिकारी इस गिरफ्तारी की जानकारी निरुद्ध किए जाने के स्थान के बारे में जानकारी के साथ तत्काल निम्नलिखित व्यक्ति को भेजी जाएगी—
- (क) गिरफ्तार व्यक्ति के नातेदार, मित्र या ज्ञात अन्य व्यक्ति जिसे गिरफ्तार व्यक्ति नाम निर्देशित करें;

- (ख) उक्त (क) में असफल रहने पर स्थानीय विधिक सहायता समिति।
- (2) ऐसी जानकारी जैसी सुविधा हो, तारया टेलीफोन द्वारा भेजी जाएगी और पुलिस अधिकारी द्वारा यह तथ्य कि ऐसी जानकारी भेज दी गई है गिरफ्तार व्यक्ति के हस्ताक्षर के अधीन अभिलिखित की जाएगी।
- (3) पुलिस अधिकारी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का एक अभिरक्षा ज्ञापन और शरीर प्राप्ति तैयार करेगा जिस पर उसके द्वारा तथा उस स्थान के जहाँ गिरफ्तारी की गई है दो साक्षियों के सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए जाएंगे और उसे गिरफ्तार व्यक्ति के नातेदार को, यदि वह गिरफ्तारी के समय उपस्थित है, परिदृष्ट कर देगा या उसकी अनुपस्थिति में ऊपर (1) में उल्लिखित व्यक्ति को गिरफ्तारी की जानकारी के साथ उसे भेज देगा।
- (4) ऊपर (3) में उल्लिखित अभिरक्षा ज्ञापन में निम्नलिखित विशिष्टियाँ होंगी :—
 - (i) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का नाम तथा उसके पिता अथवा पति का नाम;
 - (ii) गिरफ्तार व्यक्ति का पता;
 - (iii) अपराध की तारीख, समय और स्थान;
 - (iv) अपराध जिसके लिए गिरफ्तारी की गई है;
 - (v) गिरफ्तार व्यक्ति से गिरफ्तारी के समय बराबर तभा प्रधार में ली गई संपत्ति; यदि कोई हो, और
 - (vi) कोई शारीरिक क्षति जो गिरफ्तारी के समय स्पष्ट हो।
- (5) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से पूछताला के समय उसके विधि व्यवसायी को उपस्थित रहने की अनुमति दी जाएगी।
- (6) पुलिस अधिकारी जैसे ही गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को पुलिस थाने लाया जाता है उसे इस धारा के विषय-वस्तु की जानकारी देगा और पुलिस डायरी में निम्नलिखित तथ्यों की प्रविष्टियाँ करेगा :—
 - (क) वह व्यक्ति जिसे गिरफ्तारी की जानकारी दी गई है;
 - (ख) यह तथ्य कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस धारा के विषय-वस्तु की जानकारी दी गई है; और
 - (ग) यह तथ्य कि अभिरक्षा ज्ञापन तैयार किया गया है जैसा कि इस धारा में अपेक्षित है।

(पैरा 5.16)

14.8 आयोग की राय है कि विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्यात् 4 में अंतर्विष्ट सिफारिशों के अतिरिक्त, दृष्ट प्रतिक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 में निम्न प्रकार संशोधन किया जाए :—

“54. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सा व्यवसायी द्वारा परीक्षा— जब कोई व्यक्ति जो किसी आरोप पर या अन्यथा गिरफ्तार किया जाता है, अभिरक्षा में अपने अवरोध की अवधि के दौरान किसी समय अधिकथन करता है कि उसके शरीर की परीक्षा से ऐसा साक्ष्य मिलेगा जो उसके द्वारा अपराध किए जाने की प्रियदृष्टि सिद्ध करेगा या मजिस्ट्रेट के रामक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो मजिस्ट्रेट इस प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को चिकित्सायी परीक्षा के अधिकार के बारे में उसे सूचित करेगा जो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जिसके अंतर्गत लोक सेवक है अभिरक्षा के दौरान उसके शरीर के विलुप्त किए गए अपराध को सिद्ध करेगा और अपराधी को ऐसे अधिकार की संसूचना के तथ्य के बारे में लेखदृढ़ करेगा जिसमें किसी लोक सेवक के, जिसने उसे गिरफ्तार किया है, अवधिकारी भय के बिना या ऐसे लोक सेवक की उपस्थिति के बिना, अपने अधिकार का प्रयोग किया है तब मजिस्ट्रेट यदि गिरफ्तार व्यक्ति ऐसे अधिकथन करता है जब तक कि मजिस्ट्रेट यह नहीं समझता है कि अधिकथन खिजाउया विलंब के प्रयोजन के लिए अथवा न्याय के निष्कर्ष को विफल करने के लिए किया गया है, ऐसे व्यक्ति के शरीर की किसी रजिस्ट्रीकूट चिकित्सा

व्यवसायी द्वारा इसके अधीन विहित रीति में परीक्षा कराएगा और निम्नलिखित विशिष्टियां उत्तिलिखित करेगा :

- (क) अभियुक्त पीड़ित व्यक्ति की परीक्षा किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा या उपलब्ध किसी सरकारी चिकित्सालय द्वारा की जाए जैसा मजिस्ट्रेट निवेश दे।
- (ख) रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी जिसको ऐसा व्यक्ति अग्रेषित किया जाता है उसकी विना विलंब के परीक्षा करेगा और एक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसमें विनियिष्ट रूप से निम्नलिखित व्यौरे अभिलिखित करेगा :

 - (i) पीड़ित और उस व्यक्ति का, जिसके द्वारा यह लाया गया था, नाम और पता;
 - (ii) पीड़ित व्यक्ति की आयु;
 - (iii) उसके शरीर पर बाह्य/भीतरी क्षति, यदि कोई हो;
 - (iv) पीड़ित व्यक्ति की साधारण मानसिक दशा;
 - (v) अन्य तात्त्विक विशिष्टियां और अन्य सुसंगत व्यौरे,

- (ग) उक्त परीक्षा की रिपोर्ट में ऐसे निष्कर्षों के प्राप्त करने के लिए संक्षिप्त कारण कथित किए जाएं।
- (घ) रिपोर्ट में यही परीक्षा प्रारंभ करने और पूर्ण करने का ठीक समय नोट किया जाएगा और विना विलंब के रिपोर्ट को मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा जो उसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार कार्रवाई करेगा।

(पैरा 7.8)

14.9 विभिन्न सुरक्षापायों के और अधिक तथा प्रभावी अनुपालन किए जाने की दृष्टि से आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160(1) में अंतर्विष्ट विवरान परन्तुके पश्चात् निम्नलिखित रूप में दूसरा परन्तुक जोड़ा जाए :—

57क. कुछ तथ्यों को सत्यापित करने का मजिस्ट्रेट का कर्तव्य—जब विना वारंट के गिरफतार किया गया कोई व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तब मजिस्ट्रेट गिरफतार किए गए व्यक्ति से पूछताछ करके अपना समाधान करेगा कि धारा————— (गिरफतारी, गिरफतारी पर अधिकार आदि के संबंध में सुरक्षापायों से संबंधित धाराएं प्रविष्ट की जाएं) के उपबंधों का अनुपालन किया गया है और गिरफतारी की तारीख तथा समय के बारे में भी दूष कर अभिलिखित करेगा।

(पैरा 5.22)

14.10 यदि पुलिस अधिकारी ग्रथम इत्तला रिपोर्ट अभिलिखित करते से इन्कार करता है तो व्यक्ति को (i) अभिरक्षा के दौरान क्षति या यंत्रणा और वथ से भिन्न अन्य सभी अपराधों के मामले में मुख्य न्याय मजिस्ट्रेट के समक्ष और (ii) अभिरक्षा में मृत्यु के मामलों में सेशन न्यायाधीश के समक्ष अर्जी फाइल करने का अधिकार होना चाहिए। तदनुसार आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 154क निम्नलिखित रूप में अंतःस्थापित की जाए :

“154क. धारा 154 में किसी वात के होते हुए भी (1) अभिरक्षा में अपराध से संबंधित मामलों में उस धारा की उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूचना अभिलिखित करने के लिए पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की ओर से इन्कार किए जाने से व्यंग्यित कोई व्यक्ति (जिसके अंतर्गत विधिक सहायता केन्द्र या एन० डी० जी० या कोई मित्र अथवा नातेदार है) ऐसी सूचना का संक्षेप देते हुए,

- (क) अभिरक्षा में अपराध के ऐसे मामले में पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु अंतर्वलित करने से भिन्न है तो मुख्य न्यायपालिक मजिस्ट्रेट के समक्ष; या
- (ख) अभिरक्षा में अपराध के ऐसे मामले में जिसमें पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु अंतर्वलित है, तो सेशन न्यायाधीश के समक्ष अर्जी फाइल कर सकेगा।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सैशन न्यायाधीश यदि प्रारंभिक जांच करते पर उसका यह समाधान हो जाता है कि प्रथम दृष्ट्या मामला बलवा है तो शिकायत पर स्वर्य जांच कर सकेगा या, यथास्थिति, किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या अपर सेशन न्यायाधीश को जांच करने के निवेश द्वारा सक्षम न्यायालय के अनुसन्धानों अधिकारियों को निवेश दे सकेगा कि उस अपराध की बाबत जो विधा गया ग्रन्ती हो सक्षम न्यायालय में परिवाद फाइल किया जाए।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में किसी वात के होते हुए भी उपधारा (2) के अधीन परिवाद किए जाने पर सक्षम न्यायालय अपराध का संज्ञान करेगा और उसका विचारण करेगा।

(4) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सैशन न्यायाधीश किसी लोक सेवक या ग्रामिकारी की जिसे वह उपधारा (2) के अधीन जांच करने में उपयुक्त समझे, सहायता ले सकेगा।

(पैरा 8.5)

14.11 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160(1) में अंतर्विष्ट विवरान परन्तुके पश्चात् निम्नलिखित रूप में दूसरा परन्तुक जोड़ा जाए :—

“परन्तु किसी व्यक्ति से अपने निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर उपस्थित होने की अवेक्षा नहीं की जाएगी जब तक अन्वेषण अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से ऐसा करना आवश्यक न हो, और ऐसा प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार लिखित आदेश द्वारा समन किया जाएगा।”

(पैरा 6.3)

14.12 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197(1) के तीने निम्नलिखित रूप में एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाना चाहिए :—

“स्पष्टीकरण—संकेत दूर करने की दृष्टि से इसके द्वारा यह प्रोवित किया जाता है कि किसी न्यायाधीश या लोक सेवक द्वारा किए गए किसी अपराध को जो उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की बाबत किए गए मानव शरीर के विश्व अपराध है अथवा ग्रामिकार का दुरुपयोग गठित करने वाले किसी अन्य अपराध को इस धारा के उपबंध लागू नहीं होंगे।”

(पैरा 10.5)

14.13 अभिरक्षा में रहते हुए अपराध के लिए पृथक् रूप से वर्तिकार का उपबंध करने की दृष्टि से आयोग दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में निम्नलिखित रूप में एक नई धारा 357क अंतःस्थापित करने की सिफारिश करता है :—

धारा 357क. अभिरक्षा में रहते हुए अपराध में प्रतिकर] [

(1) धारा 357 के उपबंधों के होते हुए भी जहां न्यायालय किसी लोक सेवक को किसी ऐसे अपराध का दोषसिद्ध करता है, जिसका परिणाम मृत्यु या शारीरिक क्षति है जो ऐसे लोक सेवक के उसके अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के विश्व किसी कार्य से गाठित हुआ है वहां इस धारा के उपबंध लागू होंगे।

(2) न्यायालय किसी मामले में जिसको वह धारा लागू होती है, निर्णय पारित करते समय यह आदेश देगा कि वह सरकार जिसके कार्यकालाप के संबंध में ऐसे लोक सेवक उस समय नियोजित था जब ऐसा कार्य किया गया, ऐसे लोक सेवक के साथ ऐसे प्रतिकर देने के लिए संयुक्त और पृथक् दायी होती जो आदेशों में विनियिष्ट किया जाए।

(3) इस धारा के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए कोई आदेश अपील न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा या सैशन न्यायालय द्वारा भी जब वह पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो, किया जा सकेगा।

(4) उसी विषय के संबंध में किसी पश्चात्वर्ती वाद में प्रतिकर का अधिनियम करते समय सिविल न्यायालय इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में संदर्भ या वसूल की गई किसी रकम को हिसाब में लेगा।

(5) इस धारा के अधीन अधिनिर्णीत रकम निम्नलिखित से कम नहीं होगी :—

- (क) ऐसी शारीरिक क्षति की दशा में जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु नहीं होती है, पच्चीस हजार रुपए,
- (ख) मृत्यु की दशा में एक लाख रुपए।

(6) इस धारा के अधीन प्रतिकर की रकम तय करते समय न्यायालय धारा 34 (5) के उपक्रमों के अधीन रहते हुए सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा जिनके अंतर्गत निम्नलिखित है किन्तु अवधिकर्ता उन तक सीमित नहीं होगी, भी है :—

- (क) पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगी गई क्षति का प्रकार और गंभीरता;
- (ख) पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगी गई मानसिक मनोव्यथा;
- (ग) पीड़ित व्यक्ति के उपचार और पुनर्वास पर उपगत या किए जाने के लिए संभाव्य व्यय,
- (घ) पीड़ित व्यक्ति की वास्तविक और आशयित अर्जन क्षमता और प्रतिकर के लिए हकदार व्यक्तियों और कुटुम्ब के अन्य सदस्यों पर इस हानि का प्रभाव;
- (इ) वह सीमा जिस तक पीड़ित व्यक्ति ने स्वयं क्षति में योगदान दिया है;
- (च) मामले के अभियोजन में उपगत व्यय।

(7) पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की दशा में न्यायालय जीवन की प्राक्कलित अवधि से गुणा करके पीड़ित व्यक्ति की प्राक्कलित वार्षिक आय को हिसाब में लेगी।

(8) कार्यवाही का अंतिम अवधारण लंबित रहने तक न्यायालय आंतरिक राहत के रूप में ऐसा प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकता है जैसा कि वह मामले के किसी प्रक्रम पर दोषसिद्धि का निर्णय प्राप्त होने से भी पूर्व मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

(9) सरकार इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में उसके द्वारा संदर्भ किसी रकम को पूर्णतः या भागतः जो वह उचित समझे, दोषी लोक सेवक से वसूली कर सकती है।

(पैरा 12.7)

भारतीय साक्ष्य अधिनियम

14.14 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी उपवंश जो इस समय पुलिस अधिकारियों तक सीमित है, उन्हें सभी लोक अधिकारियों तक विस्तृत कर दिया जाना चाहिए और धारा का इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए।

“25. लोक अधिकारियों से को गई संस्वीकृति का साक्षित न किया जाना—किसी लोक सेवक से को गई कोई भी संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध संगठित न की जाएगी।”

इस धारा में लोक सेवक से अभियोजित है,—

- (क) ऐसा लोक सेवक जो पुलिस आफिसर नहीं है, जिसे संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है।
- (ख) प्रत्येक पुलिस आफिसर वह उसे ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है अथवा नहीं।

26. लोक सेवक की अभिरक्षा में होते हुए अभियुक्त द्वारा को गई संस्वीकृति का उपके विरुद्ध साक्षित न किया जाना—कोई भी संस्कृति जो किसी व्यक्ति ने उस समय की थी जब वह लोक सेवक की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साक्षित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो।

स्पष्टीकरण—इस धारा में “मजिस्ट्रेट” के अंतर्गत कोर्ट सेट जार्ज की प्रेसिडेंसी में या अन्यथा मजिस्ट्रेट के कृत्य का निर्वहन करने वाला ग्रामणी नहीं आता है जब कि वह अग्रणी कोड आफ ब्रिटिश प्रोसीजर, 1882 (1882 का 10) के अधीन मजिस्ट्रेट की अधिकारिता का प्रयोग करने वाला मजिस्ट्रेट न हो।

(पैरा 11.7)

14.15 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाए :—

“27. अभियुक्त की पहल पर तथ्य का उद्घाटन—जब किसी सुसंगत तथ्य के बारे में यह अभियोजन की विवादी अपराध के अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप पता चला है तो वह ऐसा व्यक्ति पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो या न हो तब तथ्य जिसका इस प्रकार पता चला है, तो जानकारी, साक्षित की जा सकती है ताकि वह संस्वीकृति की कोटि में आता है या नहीं।”

(पैरा 11.6)

14.16 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में एक नई धारा निम्न रूप में अंतःस्थापित की जाए :—

“114ब. (1) किसी पुलिस आफिसर के अभियोजन में ऐसे कार्य द्वारा गठित किसी अपराध के लिए जिसके बारे में यह अभियोजन किया गया है कि उसके द्वारा किसी व्यक्ति को मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित हुई है, यदि ऐसा साक्ष्य है कि मृत्यु या क्षति उस अवधि के दौरान हुई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तब न्यायालय वह उपधारणा कर सकेगा कि मृत्यु या क्षति उस पुलिस अधिकारी द्वारा कारित की गई है जिसकी अभिरक्षा में वह व्यक्ति उस अवधि के दौरान था।

(2) न्यायालय यह विनिश्चय करते हैं कि वह उपधारा (1) के अधीन कोई उपधारणा के अथवा नहीं सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखे, विशेष रूप से वह (क) अभिरक्षा की अवधि (ख) किस प्रकार क्षति हुई थी, जो साक्ष्य में ग्राह्य कथन है, (ग) किसी चिकित्सा व्यवसायी का साक्ष्य जिसने पीड़ित व्यक्ति की परीक्षा की हो और (घ) किसी मजिस्ट्रेट का साक्ष्य जिसने पीड़ित व्यक्ति का साक्ष्य अभिलिखित किया हो या अभिलिखित करने का प्रयास किया हो।”

(पैरा 11.3)

14.17 हम सिफारिश करते हैं कि पुलिस संगठन की तृतीय संरचना की जाए जिसमें अन्वेषण के बारे में कार्यवाही करने वाले खंड को विधि और व्यवस्था के बारे में कार्यवाही करने वाले खंड से पृथक् रखा जाए। इसके अतिरिक्त पुलिस को आधुनिक तकनीक में उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(पैरा 13.6)

न्यायमूलि के एन० सिह

अध्यक्ष

प्रो० डॉ० एन० सदानन्दिन

सदस्य

प्रो० एम० वर्षभी

सदस्य (अंशकालिक)

च० प्रभाकर राव

सदस्य सचिव

एम० मार्केस

सदस्य (अंशकालिक)

अभिरक्षान्तर्गत अपराध

(कार्यपद)

पुलिस और किसी अपराध के अन्वेषण के संबंध में पूछताछ के लिए विश्वद करने की शक्ति रखने वाले अन्य शासकीय अभिरक्षणों को अभिरक्षा में संवेद्य व्यक्ति पर कोई ज्ञानदाती और उनको यातना के बारे में परिचाद, पहले भी मिलते रहे हैं। कुछ संघर्षों में अभिरक्षा का क्षेत्र अस्तित्व व्यापक हो गया है क्योंकि पुलिस अभिरक्षा में यातना, हमला, शक्ति और मृत्यु को घटनाओं में अभूतपूर्व अनुपातिक बढ़ रही है। संविधान का अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी वा उपबंध करता है यद्यपि इसमें अभिरक्षा में यातना के विश्वद कोई अभिव्यक्ति उपबंध नहीं है, किंतु भी किसी व्यक्ति को दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए यह बाकी पर्याप्त है क्योंकि विधि द्वारा स्थानित कोई भी विधि या प्रक्रिया, अभिरक्षा में इसी व्यक्ति को यातना वा उपबंध पर हमला अनुज्ञात नहीं करती है। कानूनी विधियों जिनमें भारतीय दंड संहिता भी है, हमला और शक्ति के विश्वद किसी व्यक्ति को दैहिक स्वतंत्रा भी सुनिश्चित करती है। तथापि, किसी व्यक्ति को दैहिक स्वतंत्रता और प्राण के रक्षणायकारी संवेद्यात्मिक और कानूनी उपबंधों के बाबूद, पुलिस अभिरक्षा में यातना और मृत्यु को बढ़ती हुई घटनाएं विश्वासक बारक हो गई हैं। प्राप्त: हमें प्रतिदिन संगताचार पदों में पुलिस और अन्य शासकीय अभिरक्षणों को अभिरक्षा में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर कोई विश्वसनीय संभिक्ता उपलब्ध नहीं है, किंतु भी ऐसे इंटरवेयर्स ने अपनी 1993 को रिपोर्ट में उपर्याप्त किया है कि भारत में 1985-1992 के दौरान अभिरक्षा में 415 लोगों को मृत्यु होने को रिपोर्ट मिली थी। हाल की एक प्रेस रिपोर्ट से भी पता चलता है कि जिले वरी-गवर्नर, 1993 के दौरान अभिरक्षा में 45 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। इन आंकड़ों को शुद्धी के बारे में चर्चा किए बिगड़ रहे हैं कि अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाएं चर्चावाली जनक अनुपात में बढ़ रही हैं जो विधि सम्मान और दांडिक न्याय के प्रशासन को विश्वसनीयता को प्रतिकृति न्याय कर रही है। इसे ज्ञान स्वतंत्रा व्यक्तियों को अनुरागिता को कुरेदा है और न्यायालयों, भावन अधिकार त्रिकायादियों राज्य संचालनायकों द्वारा आलोचनाओं को बढ़ावा दिया है। समृद्धि वह महसूस करता है कि पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु को, बड़ा गंभीरता से लिया जाना चाहिए अन्यथा वह पुलिस राज के उत्तरान के लिए एहत लक्ष्य डाग होगा। इस गफठोरता पूर्वक दर्भन करना चाहिए और दंड ऐसा होना चाहिए जो दूसरों को ऐसे अवरोध में लिया होने से विवरित करें।

अभिरक्षान्तर्गत हिता और पुलिस शक्ति का दुरुपयोग, अंतर्राष्ट्रीय समृद्धि की चिता का विषय रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 9 दिसंबर, 1975 को यातना और अमानवीय अप्रभान्तरके व्यवहार या दंड के अन्य अपराधों से व्यक्तियों के संरक्षण के लिए घोषणा अग्रिमार की थी। घोषणा में सदस्य राज्यों को, युद्ध का स्थिति या युद्ध कों आशंका या आंतरिक राजनितिक स्थिरता जैसी आपवादिक परिस्थितियों में भी अनुज्ञा करने या सहन करने से प्रतिविद्ध किया गया था। अनुच्छेद 5 में यातना के विश्वद, विधि प्रबंध 1 अधिगतियों का सबत प्रशिक्षण अपेक्षित है। अनुच्छेद 7 में पूछताछ, पद्धतियों और प्रथाओं, साथ ही अभिरक्षान्तर्गत इंजिनों के पुर्वविदोक्त को प्रणाली अपेक्षित है। अनुच्छेद 7 राज्यों के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि यातना के कृत्य, राष्ट्रीय दांडिक विधि के अधीन अपराध बनाए जाएं। घोषणा यह भी उपबंध करती है कि पोंडिंग व्यक्ति को परिवार और प्रविकर प्रदान किया जाएगा। घोषणा, जो आबद्धकर अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक भाग है, हमारे देश में अभी तक कायानिवार नहीं की गई है। महासभा द्वारा 17 दिसंबर, 1979 को अपनाई गई विधि प्रवर्तन अधिकारियों के लिए एक आवरण संहिता भी विद्यालय है, जिसके अधीन कर्मचारियों द्वारा "नैतिक मानदंडों के प्रमाणी अनुरक्षण" के लिए व्यक्तियों मानव किया जाएगा। अनुच्छेद 5 विधि प्रवर्तन अधिकारियों को यातना का कोई कृत्य अधिरोपित करने, उन्हाने या सहन करने से प्रतिविद्ध करती है। इसके बाद 10 दिसंबर, 1984 को एक अभितम्य द्वारा एक और घोषणा अपनाई गई जिसमें 33 अनुच्छेदों के अधिक व्यापक क्षेत्र के लिए उपबंध है। महासभा ने 29 नवंबर, 1985 को "अपराध से पोंडिंग व्यक्तियों के लिए न्याय के आवारिक तिदांत और शक्ति के दुरुपयोग पर कारकस घोषणा" नाम से ज्ञात एक और

घोषणा अपनाई थी। यह घोषणा राज्य के लिए शक्ति के दांडिक दुरुपयोग के प्रतिविधि के लिए और यातना पद्धतियों के आश्रय के प्रतिवेदि के लिए भी विशियों को परिशायित करना आवश्यक बताती है। भारत, इन घोषणाओं और अभिसंघों द्वा एक पक्षतार है जो के बारण व्यक्ति के हुस्तयोग के निवारण के लिए, जिसके अंतर्गत यातना और अभिरक्षान्तर्गत हिता भी है, और अनुच्छेद 5 1 के अधीन संवेद्यात्मिक आवेद्य के अनुसार पीड़ित व्यक्तियों और उन्हें कुर्तूब के दस्तावेजों के प्रति स्थान और प्रतिकार का उपबंध करने के लिए, प्रभावी कदम की बाध्यता के अधीन है।

परिषद्वारा ले, अभिरक्षा में यातना और मृत्यु के विभाग ऐसे निर्धारित व्यक्ति हैं जिनके पास अपने प्राण और स्वतंत्रता को संरक्षण के लिए पर्याप्त संवेद्यता वित्त नहीं होता है। अनेक मामलों में किसी भी 1 कुटुंब का एक यात्री जीवित रहने वाला व्यक्ति, अपने पीछे संरूप कुटुंब को निर्धारित और भवित्वी का स्विट्च में छोड़ता अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु वा शिवाय बन जाता है। इसीलिए, विधि आयोग ने स्वत्रेणा से विधायकी इस विधय को लेकर आवश्यक संज्ञा दाता किए एसी घटनाओं की पुनरावृत्ति के लिए दंड की व्यवस्था करने, और पीड़ित व्यक्तियों द्वारा उनके आश्रितों को आर्थिक राहत की मंजूरी के लिए भी, विधियों का संशोधन करके समुचित कदम उठाए जा रहे।

हम अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की सदस्यों के संबंध में उठने वाले विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करें, इनके दूर्वा यह आवश्यक है कि हम संज्ञा में प्राणों के अधिगत के संरक्षण के लिए संवेद्यात्मिक उपबंध और अभिरक्षा में यातना और हमले के विश्वद गारंटी पर एक बार दृष्टिगत कर लें। संवेद्यात्मिक अनुच्छेद 21 यह उपबंध करता है कि इसी व्यक्ति को अपने प्राण और दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थानित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्राणों से वंचित न जिया जाएगा। "प्राण अथवा दैहिक स्वतंत्रता" पद के अंतर्गत यात्रवान विश्वासक द्वारा यातना और हमला के विश्वद गारंटी भी शामिल है। अनुच्छेद 22 कुछ अवस्थाओं में बंदीकरण और नियोग से संरक्षण की भारती देता है। यह घोषित जारी है कि कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार जिया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत लाराए गए बिना अभिरक्षा में विश्वद लहरी की जाएगा और अपनी लहरि के विधि व्यवस्थायी से परामर्श द्वारा तथा प्रतिवार कराने के अधिगत है। अनुच्छेद 22 का अनुच्छेद 2 2 कुछ अवस्थाओं में बंदीकरण और नियोग से संरक्षण की भारती देता है। यह घोषित जारी है कि कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार जिया गया है और अभिरक्षा में विश्वद किया गया है, गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अधिकता के भीतर निकटस्थि भिजिस्ट्रेट के स्वत्का प्रेषण जिया जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 20 (3) के अधीन किसी अपराध में अभियुक्त विधियों व्यक्ति को स्वयं उसके विश्वद साक्षों होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इस संवेद्यात्मिक उपबंधों द्वा उपबंध, किसी व्यक्ति के किसी अवराध के लिए जाने के संबंध में उसकी गिरफ्तारी के पश्चात भी प्राण और उसकी लंबाई की रक्षा करना है। यद्यपि अनुच्छेद 21 और 22 में, किसी गिरफ्तार व्यक्ति पर, जब वह अभिरक्षा में होता है, यातना और अपराध के विश्वद कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है और फिर भी उच्चतम न्यायालय ने यह अधिविधारित किया है कि अनुच्छेद 21 राज्य द्वारा, किसी व्यक्ति को, जब वह अभिरक्षा में है, यातना और हमले के विश्वद संरक्षण की गारंटी देता है।

संवेद्यात्मिक गारंटी से संगत, जिसी अपराध के लिए जाने के संबंध में गए व्यक्ति के संरक्षण के लिए कानूनी उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता में अंतर्विष्ट हैं। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 5 में जिसी व्यक्ति की गिरफ्तारी और उन रक्षणायों के लिए उपबंध है जो गिरफ्तार के हित के संरक्षण के लिए पुलिस द्वारा जिए जाने के अधिगत व्यक्ति को स्वयं उसके विश्वद साक्षों होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इस संवेद्यात्मिक उपबंधों द्वा उपबंध, किसी व्यक्ति के किसी अवराध के लिए जाने के संबंध में गए व्यक्ति के हित के संरक्षण के लिए पुलिस द्वारा जिए जाने के लिए अपेक्षित है जो गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के हित के संरक्षण के लिए जिसी आदेश या दारंट के बिना, उसमें विनियोग परिस्थितियों के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति विद्यालय और उच्चकानून विद्यालय है। यह उपबंध, किसी पुलिस अधिकारी को जिसी व्यक्ति के स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की अदिव्यापद्ध शक्ति प्रदान करता है। धारा 41 जिसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के जिसी आदेश या दारंट के बिना, उसमें विनियोग परिस्थितियों के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति विद्यालय और उच्चकानून विद्यालय विद्यालय और राज्य की अदिव्यापद्ध शक्ति प्रदान करता है। धारा 46 गिरफ्तार करने की पद्धति और रीति या उपबंध वार्ता की जा सकती है। उस स्थायी अधीन, कोई औपचारिकता आवश्यक नहीं है क्योंकि यह दर्दी अवश्यक वार्ता की जा सकती है। जिसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए आवश्यक है जो अनुज्ञा नहीं है जितना उस व्यक्ति के भाग निकलने के विवारण के लिए आवश्यक है।¹ धारा 50, वारंट के बिना किसी व्यक्ति

1. देविए मुनील बता बनाम दिल्ली प्रशास

को गिरफ्तार करने वाले प्रत्येक पुलिस अधिकारी को उसे उस अपराध की पूर्ण विशिष्टयां जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है और ऐसी गिरफ्तारी के लिए कारण संसूचित करने के लिए व्यक्ति करती है। पुलिस अधिकारी से वह भी अपेक्षा की गई है कि वह गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को सूचित करे कि वह जमानत पर निर्मुक्त किए जाने का हक्कार है और किसी अजभानतीय अपराध के लिए उसकी गिरफ्तारी की दशा में वह अपनी ओर से प्रतिभूमों के लिए व्यवस्था कर सकता है। पुलिस अधिकारी के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की चिकित्सायां परीक्षा कराना अनुच्छेद है। इसी प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को अपनी चिकित्सायां परीक्षा के लिए जिद दरने वा अधिकार है। (धारा 53 और 54) धारा 56 में वह अपेक्षा करने वाला एक आज्ञापक उपबंध अंतर्विष्ट है कि वारंट के बिना गिरफ्तारी करने वाला पुलिस अधिकारी अनावश्यक विलम्ब के बिना उस व्यक्तियों को जो गिरफ्तार किया गया है, मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाएगा। धारा 57 में वह उपबंध है कि वारंट के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को कोई पुलिस अधिकारी उससे अधिक अवधि के लिए जो उस भास्तु की सब परिस्थितियों में उचित है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घण्टे से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में रिहड़ नहीं रखेगा। तथापि, यदि पुलिस पूछताह या अन्वेषण के प्रयोजन के लिए अधिक अवधि के लिए किसी व्यक्तियों को रिहड़ रखना चाहती है तो उन्हें मजिस्ट्रेट से आदेश अभियाप्त करना होगा और धारा 167 के अधीन यथाविहित प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। वारंट के बिना किसी व्यक्तियों की गिरफ्तारी की सूचना, गिरफ्तार करने वाले याने के भारसाधक अधिकारी द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को, या उपर्युक्त मजिस्ट्रेट को दी जानी है, ये उपबंध गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को प्रक्रियात्मक रक्षणालय प्रदान करते हैं। जब कभी किसी व्यक्तियों को पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हो जाती है तब धारा 176 मजिस्ट्रेट से मृत्यु के कारणों की जांच करने की अपेक्षा करती है। मजिस्ट्रेट साक्ष्य अभिलिखित करने और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए मृत शरीर की जांच करवाने के लिए सशक्त है। इस धारा का उद्देश्य, संदिग्ध मृत्यु की जांच करना है ऐसी जांच और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट, मौलिक साक्ष्य का गठन नहीं करती जैसा कि न्यायालयों द्वारा अभिलिखित³ किया गया है।

भारतीय दंड संहिता में दांडिक उपबंध भी अंतर्विष्ट है जो जीवन के अधिकार का अतिलंघन निवारित करने के लिए है। धारा 220 ऐसे किसी अधिकारी या प्राधिकारी के लिए दंड का उपबंध करती है जो किसी व्यक्तियों को घट्ट या विदेषपूर्ण आशय से परिरोध में रखता है। धारा 330 और 331 उनके लिए दंड का उपबंध करती है जो किसी अपराध के लिए जाने की बाबत संस्थीकृति या जानकारी उद्दापित करने के लिए किसी व्यक्तियों को क्षति या घोर उपहासित पहुंचाते हैं। धारा 330 के दृष्टांत (क) और (ख) पुलिस अफिसर को, किसी अपराध के लिए संस्थीकृति हेतु उत्प्रेरित करने वाले वह बतलाने को कि अनुकूल चुराई हुई संपत्ति कहां रखी है उत्प्रेरित करने के लिए किसी व्यक्तियों को यातना देने का दोषी बनाता है। इसलिए धारा 330, यातना को भारतीय दंड संहिता के अधीन सीधे दंडनीय बताती है। ये कानूनी उपबंध गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के हित की रक्षा करने के लिए हैं, किन्तु ये अपर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त, पुलिस इन उपबंद्धों का अनुसरण नहीं करती है, इसके बजाय वे अभिलेखों में हलसाधन द्वारा प्रक्रियात्मक विधि की कठोरता से बचते हैं। जैसा कि पहले देखा गया है बिना वारंट के गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्तियों को अनावश्यक विलम्ब के बिना मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए और उसे उस अपराध की जिसके लिए वह गिरफ्तार किया गया है या उसकी गिरफ्तारी के आधार की की जानकारी भी दी जानी चाहिए और यदि उसे असंज्ञय अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया है तो जमानत पर निर्मुक्त कर दिया जाना चाहिए। पुलिस से यह और अपेक्षा है कि वह उसकी गिरफ्तारी की प्रविष्टि, पुलिस अधिनियम और पुलिस मैनुअल के अधीन विभिन्न दस्तावेजों में बारे तथा गिरफ्तारी की तारीख और समय के बारे में जिला मजिस्ट्रेट और उपर्युक्त मजिस्ट्रेट की सूचना दे। विधियों द्वारा अनुपायकारिक गिरफ्तारी करती है, ऐसी उदाहरणों की कमी नहीं है जहां पुलिस ने किसी अपराध के अन्वेषण के संबंध में बिना वारंट यिसी व्यक्तियों की गिरफ्तार किया है तथा आगे अन्वेषण के प्रयोजन के लिए दो आयुर्वेद अथवा साल की वसूली के लिए और कानूनी विधि के उल्लंघन में संस्थीकृति निकालने के लिए भी गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को यातना के अध्यधीन किया है। बंदी के शरीर पर कारित यातना और क्षति का परिणाम वाली कभी उसकी मृत्यु होती है। साधारणतः अभिलेखों में अभिरक्षा में हुई मृत्यु नहीं दिखलाई जाती है और पुलिस द्वारा लाश के व्यवन

या वह माला बनाने का प्रत्येक प्रयास किया जाता है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की मृत्यु उसको अभिरक्षा से मुक्त किए जाने के पश्चात हुई थी। ऐसी यातना या मृत्यु के विरुद्ध किसी परिवाद पर पुलिस अधिकारी द्वारा भाईचारे के द्वारा काई ध्यान नहीं दिया जाता है। यथापि व्यक्ति द्वारा उसके संबंधियों की प्रेरणा पर कोई प्रथम इतिमान रिपोर्ट स्वीकार नहीं की जाती और उच्च पुलिस अधिकारी भी ऐसी परिवादों की ओर से जांचें केरले लेने को अधिमान देते हैं। किन्तु यदि शिकार व्यक्ति या उसके संबंधियों द्वारा औपचारिक अभियोजन लारंभ भी कर दिया जाता है तो यातना या उपहासित करने के जिसका परिणाम मृत्यु है, आरोप को लिह द्वारा करने के लिए कोई प्रथम साक्ष्य उपलब्ध नहीं है क्योंकि वह पुलिस हवालात, जहां साधारणतः गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर यातना या क्षति कारित की जाती है, लोक दृष्टि से दूर होते हैं जहां पर एकमात्र साक्षी या तो पुलिस कमी है या सह बंदी, जो अभियोजन साक्षियों के रूप में हाजिर होने से, प्रथमतः पुलिस भाईचारे के द्वारा, और द्वितीयतः पुलिस के उच्च वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा प्रतिकार के भव्य के कारण अत्यधिक निरपेक्ष होते हैं।

जैसी कि विधि इस समय है कि यदि पुलिस अभिरक्षा में यातना मृत्यु या क्षति के विरुद्ध कोई परिवाद किया जाता है तो न्यायालय में आरोप सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और परिवादी या अभियोजन सभी युक्तियुक्त संदेश से परे आरोप सिद्ध करने के लिए साक्ष्य पेश करने में असमर्थ है। ऐसे मामलों में, उत्पाइन पद्धतियों का आशय लेने के लिए उत्तरदायी पुलिस कर्मचारियों के विरुद्ध साक्ष्य प्राप्त कर पाना कठिन और साक्षातः असंभव है क्योंकि वे पुलिस थाना अभिलेख के भार साधक हैं जिसे हलसाधित करना उनके लिए कठिन नहीं होता है। परिणामस्वरूप, अपचारी अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन का परिणाम दोषमुक्त होता है। उच्चतम न्यायालय ने भी मामलों की श्रृंखला में इस कठिनाई पर विचार किया था और यह संप्रेषण किया था कि इस स्थिति में, साक्ष्य विधि में सबूत के भार से संबंधित विधि का संशोधन अपेक्षित था।

सबूत के भार से संबंधित विधि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 से 114 तक में अंतर्विष्ट है। इन धाराओं से यथा व्यवहार संबंधित यह है कि अभियोजन का किसी अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध आरोपित अपराध के सभी आवश्यक तत्वों का, सभी युक्तियुक्त संदेश से परे साक्षित करना एक आज्ञापक कर्तव्य है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा रामसागर वादक के मामलों में दिए गए न्यायालय के विधि आयोग ने अपनी 113वीं रिपोर्ट में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 114वीं के रूप में एक नई धारा के अंतःस्थापन की सिफारिश की थी। विधि आयोग की सिफारिश यह थी कि किसी व्यक्तियों को कारित शारीरिक सती के अधिकथित अपराध के लिए किसी पुलिस अधिकारी के अभियोजन में यदि यह साक्ष्य या क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी। आयोग ने यह और सिफारिश की कि न्यायालय को, उपधारणा के प्रयोग पर विचार करते समय सभी सुलगत परिस्थितियों को भी, जिनके अंतर्गत अभिरक्षा की अवधि, शिकार व्यक्ति द्वारा किया गया कथन चिकित्सीय साक्ष्य और वह साक्ष्य भी है जो मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित की गई हो, ध्यान में रखना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने पुनः हाल के मामलों में, इस प्रयोग पर विचार किया और यह संप्रेषण किया कि मामले की स्वीकृत तथ्य यह उपदासित करते हैं कि शिकार व्यक्ति की अभिरक्षा में लिया गया था और बाद में, अगले दिन यदि वह पुलिस चौकी के पास मृत पाया गया तो यह स्पष्टीकरण देने का भार स्पष्टीकरण राज्य पर था कि शिकार व्यक्ति को वे शर्तियां किस प्रकार आई जिनसे उसकी मृत्यु कारित हुई। न्यायालय ने पुनः ऐसे मामलों में सबूत के भार के नियम के परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया। यह खोद का विषय है कि विधि आयोग की सिफारिशों और अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय के संप्रेषण संबंधित विधियों के बावजूद, साक्ष्य की विधि वे अवैधित संघोषण नहीं किए गए। पुलिस अत्याचारों और अभिरक्षान्तर्गत किसी यातना और भूत्यु से तीव्र वृद्धि की ध्यान में रखते हुए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का, जैसा पहले सुझाया गया है, संशोधन अत्यधिक सहत्य का है। इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि संसद ने अभिरक्षा के दौरान लैंगिक शोषण की बढ़ती हुई घटनाओं को दृष्टि में रखकर अभिरक्षा में बलात्संग और दृष्टि में मृत्यु के मामलों में उपधारणा बढ़ाने के लिए साक्ष्य अधिनियम का

4. ए आई आर 1985 एस सी 446.

5. 1993 (2) एस सी सी 346.

संशोधन करने के आरंभी साध्य अधिनियम, 1872 की धारा 41 और 114वाँ अंतःस्थापित की जिनके द्वारा बलात्संग और दहेज मृत्यु के लिए अधियोजन में अभियुक्त के विश्व उपधारणा करने के लिए न्यायालय के सशक्त किया गया। यह विधायी प्रयोजन, बलात्संग और दहेज के मामलों में साध्य के अवाव के तकनीकी अधिकार को पूरा करने के लिए किया गया था। अतः ऐसा कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि दही दिनांत, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामले में क्यों न विष्टारित किया जाए।

पूछताछ के दौरान अभिरक्षा में यातना और पिटाई की संभावना को कब करने के लिए विधियों में और उपर्युक्त किए जाने की आवश्यकता है। पुलिस, नियन्त्रित, किसी अपराधी को गिरफ्तार करने और अपराध के अन्वेषण के दौरान उसमें पूछताछ करने के विधिक कानून के अधीन, विधि, अभिरक्षा में अभियुक्त पर उत्पीड़न की पद्धतियों, यातना का प्रयोग करने की अनुज्ञा नहीं देती है किन्तु पुलिस साधारणतः अपराध को हल करने की दृष्टि से इन पद्धतियों का आवश्यकता है। किसी मन्दिर व्यक्ति को, कुछ विषयसंबंध जानकारी या सामग्री प्राप्त होने पर, यिरसार करना पुलिस का विधि मान्य अधिकार है, किन्तु गिरफ्तारी विधि के अनुसार ही होनी चाहिए और पूछताछ के साथ यातना और उत्पीड़न पद्धति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। पूछताछ और अन्वेषण, सही अर्थ में और अन्वेषण को प्रभावी बनाने के लिए सप्रयोज्य होने चाहिए। किसी व्यक्ति को यातना देकर और उत्पीड़न पद्धतियों का प्रयोग करके पुलिस बंद दरवाजे के पांच वह सब पा लेंगी जिसका हमारी विधिक व्यवस्था की मांग प्रतिषेध करती है। यदि विधि के अभिरक्षा संबंध अपराध करने में लिखा होता है तो समाज का कोई भी सदस्य संरक्षित और सुरक्षित नहीं रहेगा। इस स्थिति में, अभिरक्षा में यातना या क्षति या मृत्यु के मौकों को समाप्त करने या किसी भी दर पर न्यूनतम करने के लिए विधि का संशोधन करना उचित होगा। जब किसी व्यक्ति को किसी संज्ञेय अपराध के लिए बिना बारंट के गिरफ्तार किया जाता है तब पुलिस अधिकारी के लिए अभियुक्त से उसके किसी ऐसे नातेदार या भिन्न का नाम जिसे वह गिरफ्तारी के बारे में जानकारी देना चाहेगा, अभिप्राप्त करना अनिवार्य होना चाहिए और उसे गिरफ्तारी के बारे में सुचना देनी चाहिए⁶। जब अभियुक्त को किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष पैद किया जाता है तब उस मजिस्ट्रेट के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से वह पूछना आज़ाद पूर्वक होना चाहिए कि क्या उसे अभिरक्षा में किसी यातना या दुर्बलवाहार की शिकायत है और उसको यह भी सुनित किया जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 54 के अधीन उसे चिकित्सीय जांच करने का अधिकार प्राप्त है⁷। बहुधा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस अधिकार की जानकारी नहीं होती है और उसके अज्ञान के कारण, वह मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने इस अधिकार का प्रयोग करने में असमर्थ रहता है जबले ही हवालात में पुलिस द्वारा उसे यातना पहुंचाई गई हो। या दुर्बलवाहार किया गया हो। अतः यह आवश्यक है कि विधि का संशोधन किया जाना चाहिए और गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यातना के बारे में पूछना और संहिता की धारा 54 के अधीन चिकित्सीय जांच के उत्तरके अधिकार का स्वरण करना, मजिस्ट्रेट के लिए आज्ञापक होना चाहिए।

हवालात में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यातना या उसकी भिटाई साधारणतः बंद दरवाजों के पांच की जाती है और जनता के किसी सदस्य की वहाँ रहने की अनुमति नहीं होती है और ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं है जहाँ गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के कुटुंब के सदस्यों को भी उनसे थेट करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है। विकसित देशों में यह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का भलीभांती आन्धताप्राप्त अधिकार है कि वह, जब अभिरक्षा में हैं तब पूछताछ के क्रम के दौरान अपने काउंसेल की उपस्थिति के लिए जिद करे। काउंसेल की विद्यमनता, पुलिस के पूछताछ के दौरान उत्पीड़न पद्धतियों का प्रयोग करने से विरत करेगी। दं प्र० सं० अभियुक्त रूप से अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा कोई अधिभार प्रदान नहीं करता है किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने, अनुच्छेद 21 और 22 के विस्तार का निर्वचन करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त, पूछताछ के दौरान⁸ अपने काउंसेल को रखने के लिए हकदार है, उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन देश की विधि है। चूंकि उच्चतम न्यायालय के विनियन्य प्रत्येक पुलिस अधिकारी की जानकारी में नहीं लाए जाते हैं, अतः इस बाबत विधि

6. शीला बासें बनाने वाला अधिकार, ए आई आर 1983 एस सी 378 पैरा 4.

7. शीला बासें, प्रयोक्ता।

8. नवाचनी सत्यालयी बनाने पी० एस वाली, 1978 सी आर एल जे १५८ पैरा ५८, ५९ फ्लांगस्वामी अम्बर, न्यायालय के अनुसार।

का संशोधन करना ठीक और समुचित होगा। पूर्वोक्त उद्देश्यों की प्राप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41, 50 और 56 का संशोधन आवश्यक हो सकता है।

ब०इ०रि० का अभिलिखित न किया जाना

किंतु पुलिस अधिकारी के विश्व प्रथम इतिला रिपोर्ट साधारणतः अभिलिखित नहीं की जाती है। सामान्यतः, किसी अपराध के किए जाने से संबंधित प्र० ई० रि० के अभिलेखन के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी, परिवादी को बापस कर देगा यदि परिवाद, पुलिस के विश्व है। इसलिए, अभिरक्षान्तर्गत यातना, हिसां और क्षति के मामलों में, यदि शिकायत या इसका निकट संबंधी प्रथम इतिला रिपोर्ट करने के लिए कदम उठाता है तो भी वे साधारणतः अपने प्रयत्न में असफल रहते हैं। इतिला अभिलिखित करने से पुलिस थाने के आराधक अधिकारी की ओर से इंकार करने पर, परिवादी पुलिस के उच्चाधिकारियों अथवा पुलिस अधीक्षक, पुलिस उप महानिरीक्षक, और पुलिस महानिरीक्षक तक भी पहुंचने के लिए हकदार हैं किन्तु साधारणतः पुलिस विभाग के उच्च प्राधिकारी इन परिवादों को, अपने अधीनस्थ अधिकारियों के लिए नरमदिली के कारण गंभीरता से नहीं लेते हैं। यह सत्य है कि कुछ मामलों में पुलिस अधीक्षक या उच्च अधिकारियों ने प्रथम इतिला रिपोर्ट अभिलिखित करने और मामले का अन्वेषण करने के लिए कदम उठाए हैं। किन्तु, यदि पूर्ण रूप से विचार किया जाए तो शिकायत या उपराधि के निकट संबंधियों की प्रेरणा पर पुलिस के विश्व प्र० ई० रि० अभिलिखित नहीं की जाती है। अनेक मामलों में व्यक्ति पक्षकार न्यायालय पहुंचा है और उसके निवेदन पर प्रथम इतिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई है और मामले का अन्वेषण किया गया है। और अधियोजन आरंभ किया गया है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति के लिए एसा चक्रवर्ती अभिरक्षा अभिप्राप्त कर पाना संभव नहीं है। इन परिस्थितियों में, विधि का संशोधन करके स्थिति को संभालना आवश्यक है। यदि पुलिस, प्र० ई० रि० अभिलिखित करने से इंकार करती है, तो व्यक्ति व्यक्ति को, क्षति यातना के मामले में सुध्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष और अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में जिला मिजिस्ट्रेट के समक्ष याचिका फाइल करने का अधिकार होता चाहिए। और इस प्रकार की गई याचिका को दं प्र० सं० के अधीन अन्वेषण और जांच के प्रयोजन के लिए प्र० ई० रि० के रूप में माना जाना चाहिए।

अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में परिवाद का अन्वेषण

जैसी विधि इस समय है, उसके अनुसार अभिरक्षा में यातना, क्षति या मृत्यु की बाबत पुलिस के विश्व किसी परिवाद का अन्वेषण भी पुलिस द्वारा किया जाना अपेक्षित है, किन्तु ऐसी जांच प्रभावी और पूर्वाग्रह मूक्त नहीं हो सकती⁹। इस स्थिति से निपटने के लिए, कूल मामलों में, पुलिस यातना के विश्व अन्वेषण कोन्वीय आसूचना व्यूरो को सौंपा गया है किन्तु विद्यमान विधि के अधीन के० आ० व्यूरो अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के सभी मामलों का अन्वेषण हाथ में नहीं ले सकता, क्योंकि अनेक मामलों में ऐसे अन्वेषण के लिए राज्य सरकारों को सहमति उपलब्ध नहीं हो सकती है। आर्द्ध प्रक्रिया, ऐसी परिवादों की अन्वेषण और जांच करने के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण रखना होगा, और यह कार्य प्रस्तावित सानद में अधिकार आयोग को सौंपा जा सकता है। किन्तु, ऐसे आयोग के अभाव में, ऐसे मामलों में वस्तुपरक और ठीक रीति से कार्रवाई करने के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण रखना आवश्यक होगा। एक तरीका यह हो सकता है कि न्यायालयों को ऐसी परिवादों में जांच करने के लिए प्राधिकृत किया जाए। संहिता की धारा 176 के अधीन, किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की जब वह अभिरक्षा में हो, मृत्यु की दशा में जांच, ऐसी मृत्यु समीक्षा करने के लिए संशक्त मजिस्ट्रेट द्वारा की जाएगी। इस जांच का उद्देश्य मृत्यु के कारण का सत्यापन करना है। यह जांच, न्यायिक जांच है किन्तु मजिस्ट्रेट, न्यायालय के रूप में छात्य नहीं करता है और जांच परिवाट में अंतविष्ट मृत्यु समीक्षा की जाएगी। यह जांच का उद्देश्य मृत्यु के कारण का सत्यापन करना है। अब यह मत है कि पुलिस अभिरक्षा में कार्रित यातना या क्षति की परिवाद की दशा में, सुध्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को, जो जिला में मजिस्ट्रेटों का प्रमुख है, परिवाद की जांच करने की शक्ति होनी चाहिए और उस प्रयोजन के लिए अपनी निजी रूचि के पुलिस अधिकारियों की सहायता अभिप्राप्त कर सकता है। अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु के मामलों में सेशन न्यायाधीश की उस विषय की जांच करने का प्राधिकार विहित किया जाना चाहिए। यदि सेशन न्यायाधीश सुध्य न्यायिक मजिस्ट्रेट भेटों पोलिटेन मजिस्ट्रेट द्वारा जांच

9. राज्य बनान आर एस वाल, ए आई आर 1985 एस सी 145.

10. (1955) आई एस सी आर 1083.

वर, प्रथम दृष्टव्या भाग्मता है तो सेशन न्यायाधीश या मुख्य न्यायिक अजिस्ट्रेट को अपचारी अधिकारियों के विश्वदामालों के रजिस्ट्रीकरण के लिए निवेश देने में सक्षम होना चाहिए। यह पद्धित पुलिस के विश्वपरिवारों की जांच करने में जागरूकता और वस्तुपरकला सुनिश्चित कर सकती है।

विधि के अधीन कोई भी लोक सेवक, जिनमें पुलिस अधिकारी भी हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन राज्य की मंजूरी के बिना किसी अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है। निसंदेह न्यायालय के ऐसे अनेक विनिश्चय हैं कि अभिरक्षा में थातना, अति या मृत्यु कारित करना किसी पुलिस अधिकारी के पदीय कर्तव्यों के निर्वहन के अंतर्गत नहीं है और ऐसे मामलों में धारा 197 लागू नहीं की जा सकती किन्तु नियवादित: अभियोजन का सामना करने के लिए बाध्य पुलिस के सदस्यों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन, मंजूरी के अभाव का तकनीकी अभिवाकृ किया जाता है। मंजूरी की आवश्यकता को बाबत विरोध से मामलों के विवारण में अत्यधिक विलंब होता है अतः पुलिस अधिकारी के अभियोजन के लिए, जिसके विश्वदामेशन न्यायाधीश/मुख्य न्यायिक अजिस्ट्रेट द्वारा की गई जांच से प्रथम दृष्टव्या भाग्मता है, सरकार की मंजूरी की आवश्यकता समाप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संशोधन करना आवश्यक होगा इस उद्देश्य की प्राप्ति के क्रम में धारा 197 की उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित रीति में एक परन्तु भी अंतःस्थापित किया जाना आवश्यक होगा:—

“इस धारा में अंतविष्ट कोई बात ऐसे अभिरक्षान्तर्गत अपराध की दशा में लागू नहीं होगी जहाँ न्यायालय का जांच पर प्रथम दृष्टव्य यह भत है कि अभियुक्त लोक सेवक ने उसकी अभिरक्षा के भीतर दांडिकृप्रकृतिका कोई अपराध किया है।”

विधि के अधीन कोई भी लोक सेवक, जिनमें पुलिस अधिकारी भी हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन राज्य की मंजूरी के बिना किसी अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है। निसंदेह न्यायालय के ऐसे अनेक विनिश्चय हैं कि अभिरक्षा में थातना, अति या मृत्यु कारित करना किसी पुलिस अधिकारी के पदीय कर्तव्यों के निर्वहन के अंतर्गत नहीं है और ऐसे मामलों में धारा 197 लागू नहीं की जा सकती किन्तु नियवादित: अभियोजन का सामना, करने के लिए बाध्य पुलिस के सदस्यों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन, मंजूरी के अभाव का तकनीकी अभिवाकृ किया जाता है। मंजूरी की आवश्यकता की बाबत विरोध से मामलों के विवारण में अत्यधिक विलंब होता है अतः पुलिस अधिकारी के अभियोजन के लिए, जिसके विश्वदामेशन न्यायाधीश/मुख्य न्यायिक अजिस्ट्रेट द्वारा की गई जांच से प्रथम दृष्टव्या भाग्मता है, सरकार की मंजूरी की आवश्यकता समाप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संशोधन करना आवश्यक होगा इस उद्देश्य की प्राप्ति के क्रम में धारा 197 की उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित रीति में एक परन्तु भी अंतःस्थापित किया जाना आवश्यक होगा:—

“इस धारा में अंतविष्ट कोई बात ऐसे अभिरक्षान्तर्गत अपराध की दशा में लागू नहीं होगी जहाँ न्यायालय का जांच पर प्रथम दृष्टव्य यह भत है कि अभियुक्त लोक सेवक ने उसकी अभिरक्षा के भीतर दांडिकृप्रकृतिका कोई अपराध किया है।”

प्रतिकर

सभ्यता के विकास के साथ-साथ, व्यापिका लोक सेवकों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के विश्वदामेशन के प्रत्यास्थापन और प्रतिकर का अधिकार सभ्य राष्ट्रों के मध्य भलीभांति मास्यता प्राप्त कर चुका है। भारत में, स्वतंत्रता के पूर्व लोक सेवकों के अपकृत्य के लिए सरकार का दायित्व सीमित था और उससे प्रभावित व्यक्ति सिविल दावा फाइल करके अपकृत्य विधि में अपने अधिकार को प्रदान करा सकता था। किन्तु यदि शासकीय कृत्य के प्रयोग में नुकसान या अति कारित हुई थी तो उस व्यक्ति की कोई प्रत्यास्थापन या प्रतिकर-उपबंध नहीं था। स्वतंत्रता के बाद भी राज्य के शासकीय और अशासकीय कृत्यों के बीच विभेद बनाया रखा गया था और उन्मुक्ति के लिए राज्य का दावा¹¹ उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था किन्तु इस विभेद का अधिकारिक रूप से परिवर्त्याप किए बिना उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में अधिक वास्तविक रूप अपनाया है तथा “अशासकीय” पद के अंतर्गत कृत्यों का क्षेत्र व्यापक बनाया था। इसके अतिरिक्त भारत के उच्चतम न्यायालय ने अनेक अभूतपूर्व निर्णयों में प्राण और देहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का विस्तार किया है

11. कस्तूरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए आई आर 1965 एस सी 1039.

जौर अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकारात्मक तथा पुनर्विस्तार द्वारा ही की व्यवस्था की है। शासकीय और अशासकीय कृत्यों के प्रयोग के बीच विभेद के बाबजूद उच्चतम न्यायालय ने पुलिस तथा राज्य के अन्य नियवादित अधिकारियों द्वारा विकार व्यक्ति को कार्रित क्षति के लिए प्रतिकर व्यक्तियों और उनके निकट संबंधियों को प्रतिकर-प्रदान किया है¹² ऐसी नुकसानी पुलिस द्वारा गोली चलाए जाने से उद्भूत क्षतियों के लिए, जिसमें भाड़ या बलवाने विदेश नागरिक मारे जाते हैं, प्रदान की गई है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने प्रभावित व्यक्तियों को प्रतिकर प्रदान किया है किन्तु कोई भी एक रूप सिद्धांत कथित नहीं किए गए हैं। विनिर्दिष्ट विभाग के अधाव में अनिश्चय की स्थिति है और न्यायालय में प्रतिकर प्रदान करने में या उसकी प्रमाणी अवधारित करने में अपने निजी मानदंड अपनाए हैं विकारार्थी प्रश्न यह है कि क्या प्रतिकर प्रदान करने के लिए विकारार्थी उपबंध किया जाना चाहिए, और यदि ऐसा है, तो प्रतिकर की रकम अवधारित करने के लिए कौन से सिद्धांत होने चाहिए? प्रतिकर के लिए एक और प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की मृत्यु की दशा में लुकिंग के सबूत के बिना विनिर्दिष्ट सीमा तक प्रतिकर के लिए उपबंध किया जाना चाहिए? यह महसूस किया गया है कि ऐसा उपबंध सामाजिक न्याय और विधि सम्मत शासन के हित में उचित होगा। दूसरा रोचक प्रश्न यो प्रतिकर के लिए उपबंध होता है कि क्या शासन और क्षति के विकार व्यक्ति को और उसकी मृत्यु की दशा में उसके निकट संबंधियों को एक बार में प्रतिकर दिया जाना चाहिए? या विकार व्यक्ति के नाते-दारों के जीवन निवाह और जीवन यापन के साधनों का उपबंध करने के लए निरंतर दिया जाना चाहिए? हमारे देश में प्रचलित साधारण विधि के अधीन दांडिक न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा उनकी रिट अधिकारिता के अधीन प्रतिकर अथवा अनुग्रहपूर्वक संदाय का कोई अवार्ड या कार्यपालक द्वारा अनुग्रहपूर्वक संदाय, विकार व्यक्ति या उसके निकट संबंधियों के बिनी सिविल न्यायालय के समक्ष अपकृत्य में नुकसानी के लिए डिगी अभिप्राप्त करने के अधिकार के अधीन रहते हुए हैं। यदि दांडिक न्यायालय को अभिरक्षान्तर्गत अपराध के विकार व्यक्ति या उसके निकट संबंधी को प्रतिकर प्रदान करने की क्षमित विनिहित की जाती है तो फिर उन्हें अपकृत्य में सिविल न्यायालय के समक्ष एक और मुकदमे बाजी क्यों करनी चाहिए। एक मत के अनुसार दांडिक न्यायालय और सिविल न्यायालय और रिट अधिकारिता के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा अवार्ड की गई रकम अनंतिम है और प्रतिकर की अंतिम रकम सिविल न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप में मामले के साक्ष्य और परिस्थितियों की लानबीन के आधार पर विकार करके अवधारित की जाती है। इस प्रश्न पर और विकार विमर्श किया जाना अपेक्षित है।

उच्चतम न्यायालय ने मृतक के आश्रित को सहारा देने के लिए प्रतिकर मंजूर किया है।¹³ उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों के विवेष से पता लगता है कि न्यायालय ने ऐसे विकार व्यक्तियों के, जिनकी पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हुई थी, विधिक वासियों को अंतर्मित उपाय¹⁴ के रूप में 75,000 रुपए¹⁴, 1,50,000 रुपए¹⁵ और 2,00,000 रुपए¹⁶ के अवार्ड किए हैं। यह उपदर्शित करता है कि प्रतिकर की रकम एक समान नहीं रही है और कोई भी सिद्धांत अधिकारित या जनुसरित नहीं किए गए हैं। प्रतिकर का अवार्ड हर मामले में, संभवतः प्रत्येक मामले के तर्थों के आधार पर¹⁸ भिन्न-भिन्न रहा है।

12. राजस्थान राज्य वनाम विद्यावती, ए आई आर 1962 एस सी 933; सर वासव पाटिल वनाम भैसूर राज्य, ए आई आर 1977 एस सी 1749; नीलाचली बेहरा वनाम उडीसा राज्य, (1993) 2 एस सी सी 746 गुजरात राज्य वनाम भैसूर न्यायालय हासी हुसैन, ए आई आर 1967 एस सी 1885; खदल शाह वनाम विहार राज्य, ए आई आर 1983 एस सी 1086; सेवस्तेन एन बर्नी वनाम भैसूर राज्य, (1984) 1 एस सी सी 339; भीम रित्ह वनाम जम्मू कश्मीर राज्य, 1989 बन० 1 एस सी 564; भीम रित्ह वनाम जम्मू और कश्मीर राज्य (1985) 4 एस सी सी 677; सहेली वनाम पुलिस आयुक्त (1990) 1 एस सी सी 422.

13. खदल शाह वनाम विहार राज्य (1983) 4 एस सी सी 141; (1983) 3 एस सी आर 508; सेवस्तेन एन बर्नी वनाम भैसूर राज्य (1984) 1 एस सी सी 339; भीम रित्ह वनाम जम्मू कश्मीर राज्य, 1984 बन० 1 एस सी सी 504; भीम रित्ह वनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1985) 4 एस सी सी 677; सहेली वनाम पुलिस मुख्यालय (1990) 1 एस सी सी 422.

14. पीयूल पूर्व यूनियन आफ इंडियन राइट्स वनाम पुलिस आयुक्त (1984) 4 एस सी सी 730.

15. नीलाचली बेहरा वनाम उडीसा राज्य (1993) 2 एस सी सी 746.

16. सविन्दर सिंह गोदर वनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (1993) किमिनत ला रिपोर्ट, 163.

17. खदल शाह वनाम विहार राज्य (1983) 4 एस सी स

यदि विधि से अपेक्षा है कि वह सिद्धांत अधिकथित करे तो प्रश्न उत्तर है कि प्रतिकर की प्रमाणा अवधारित करने के लिए क्या सूत्र अथवा कीन से सिद्धांत विहित किए जाने चाहिए। भारतीय न्यायालयों ने सदोष मृत्यु की दशा में मृतक के अश्रितों को संदेय प्रतिकर की रकम अवधारित करने में दो प्रकार के सूत्रों अर्थात् व्याज सिद्धांत और ब्रह्मगुणज सिद्धांत का अनुसरण किया है। व्याज सिद्धांत की दशा में प्रतिकार दाना से यह अनुद्यात है कि केवल ऐसी रकम दावेदारों को संदेय होनी चाहिए जो वार्षिक अश्रितता के तुल्य व्याज का प्रोद्भवन सुनिश्चित करेगी यदि वह किसी बैंक में दीनकालिक आधार पर विनिहित की गई होती। ब्रह्मगुणज सिद्धांत के अधीन, नुकसानी आश्रितता की वार्षिक रकम को एक ऐसे गुणज से गुणा करके उस आधार पर परिकलित की जाती है जो जीवन में उल्ट फेर की अनिश्चयता की देखरेख के लिए है। रकम अवधारित करते समय नुकसानी, बानसिक पीड़ा, कष्ट, मरिमा की हानि, स्वतन्त्रता की हानि और मृत्यु¹⁹ के लिए तोषण का प्रतिनिधित्व करे। सदोष मृत्यु की दशा में प्रतिकर के अवधारण के लिए इंगलिश न्यायालयों द्वारा²⁰ अधिकथित सिद्धांतों का, भारत के उच्चतम न्यायालयद्वारा²¹ अनुसरण किया गया है। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं:—

“(1) मृतक की जीवन की संभावना का उसकी आय, उसके शारीरिक स्वास्थ्य और किसी पश्चात्वर्ती दुर्घटना द्वारा उसके जीवन के समय पूर्व परिसमाप्त की संभावना को दृष्टि में रखते हुए अनुमानित की जानी है;

(2) उसकी पत्नी की भावी व्यवस्था के लिए अपेक्षित रकम उस रकम को ध्यान में रखते हुए अनुमानित की जानी चाहिए जिसे मृतक अपने जीवन काल के दौरान अपनी पत्नी पर खर्च करता था;

(3) इस अनुमानित वार्षिक राशि में व्यक्ति के जीवन के अनुमानित वर्षों की संख्या के द्वारा गुणा किया जाना चाहिए;

(4) उक्त रकम, संपदा में पत्नी के हित के वर्धन के कटौती करने के पश्चात्, उसकी मृत्यु पर संदेय एक युक्त रकम के तुल्य सही रकम अभिप्राप्त करने के लिए उक्त रकम घटाइ जानी चाहिए; और

(5) पत्नी की उसमें पूर्व मृत्यु की संभावना के लिए भी कटौतियों की जानी चाहिए यदि पति का उसके जीवन का पूर्ण काल था और इस संभावना के लिए भी कटौती की जानी चाहिए कि विवाह का पूनर्विवाह होने की दशा में उसकी वित्तीय स्थिति में सुधार हो सकता है।”

इस संघर्ष में 14 सितंबर, 1992 को आयोजित मानव अधिकार संबंधी मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन के समक्ष अभिरक्षात्मक अपराधों के शिकार व्यक्तियों वा उनके निकट संबंधियों को दी जाने वाली राहत की बाबत रखे गए कुछ प्रस्तावों को निर्देशित करना उचित होगा। किए गए प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव में यह अनुद्यात था कि मृत्यु की दशा में प्रतिकर की रकम दार्दिक न्यायालय द्वारा सभी सुसंगत बातों को गणना में लेकर अवधारित की जानी चाहिए तथा न्यायालय अंतरिम राहत का संदाय भी अनुज्ञात कर सकता है। ऐसे अंतरिम राहत की मात्रा मृत्यु की दशा में 10,000 रुपए से अन्युन और 25,000 रुपए तक हो सकती है और अन्य अतिकी दशा में 10,000 रुपए से अधिक नहीं हो सकती। जहाँ तक मृत्यु की दशा में संदेय अंतिम राहत की बात है प्रस्ताव में 5,00,000 रुपए की और अतिकी दशा में 50,000 रुपए की अधिकतम रकम अनुद्यात थी।

दंड प्रतिक्रिया संहिता की धारा 357 न्यायालय को निर्णय पारित करते समय अवार्ड किए गए जुर्माने से प्रतिकर के संदाय के लिए निवेश देने की शक्ति प्रदान करती है। प्रतिकर की रकम अभियोजन में उपगत अद्य को पूरा करने और अपराध द्वारा कारित क्षति की हानि के प्रतिकर के लिए अनुद्यात है यदि वह प्रतिकर सिविल न्यायालय में वसूलनी प्री है। इस उपबंध के अधीन प्रतिकर के मंदाय का आदेश तभी दिया जा सकता है जबकि अभियुक्त सिद्धांत हो जाता है और जुमनिया अधिरोपित किया जाता है किन्तु प्रतिकर का मंदाय अपील के अध्यधीन है। उच्चतम न्यायालय ने इस धारा का

19. सहेली बनाम पुलिस अप्रूवत, 1961, एस सी 442.

20. (1951) ए सी 601.

21. ए बार्ड आर 1962 एस सी 1.

अनुचित रूप से निर्देशन किया है। न्यायालय ने अभिनिधारित किया है कि न्यायालय को प्रथमदृष्ट्या यह विचार करना है कि क्या किसी विशिष्टता के लिए दंड या जुमनिया अंततः आवश्यक है जबकि अपराधी को मृत्यु या आजीवन कारावास का दंड दिया जाता है यदि जुर्माने का अवार्ड किया जाता है तो भी यह अधिक नहीं होना चाहिए।²² धारा 357 के उपबंध प्रतिकर के लिए इन्हाँ व्यक्तियों को प्रतिस्थापन या प्रतिकर का उपबंध करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

पुलिस के अतिरिक्त राजस्व आसूचना निवेशालय, प्रबंतन निवेशालय, टटरक्षक, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (के ०पु०रि०ब०) सीमा सुरक्षा बल (सी०सु०ब०), केन्द्रीय और्डोगिक सुरक्षा बल (के ०ओ०सु०ब०), राज्य सशस्त्र बल जैसे अनेक अन्य सरकारी प्राधिक रण, आसूचना ब्यूरो, अनुलंघन और विश्लेषण विंग (र०), केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो (के ०आ०ब्य००), केन्द्रीय अन्वेषण विभाग (के ०आ०वि०), जैसे आसूचना अधिकरण बातायात पुलिस, अवारोही पुलिस और इण्डोनिशियन बार्ड पुलिस भी हैं जिन्हें किसी व्यक्ति को आवश्यक वस्तु अधिनियम, उत्पाद-शुल्क और सीमावाल्क अधिनियम, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, आदि के अधीन आयिक अपराधों के अन्वेषण के संबंध में निरुद्ध करने और उससे पूछताछ करने की शक्ति है।

पुलिस प्राधिकारियों²³ से भिन्न प्राधिकारियों की अभिरक्षा में यातना और मृत्यु के अनेक उदाहरण हैं। ऐसे मामलों में भी गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के हित के संरक्षण के लिए विधि का संशोधन करना आवश्यक होगा इससे विधि के सुसंगत उपबंधों का संशोधन अपेक्षित हो सकता है।

एक और दृष्टिकोण भी है जिस विचार करना आवश्यक है। भारत में पुलिस को विशेष रूप से कानून और व्यवस्था की गिरती हुई स्थिति, संप्रदायिक बलों, राजनीतिक उठापठक, विद्यार्थी आंदोलन, आतंकवादी गतिविधियों, उग्रवादियों जैसे कठोर राजनीतिज्ञों तथा अन्य बातों के साथ-साथ सशस्त्र गिरोहों और अपराधियों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए कठिन और नाज़क कार्य करने पड़ते हैं। उग्रवादी, आतंकवादी, मादक पदार्थों के व्यवसायी, तस्कर जैसे मजे हुए अनेक अपराधियों ने, जिन्होंने गिरोहों का गठन किया है समाज में अपनी गहरी जड़ें जमा की हैं। यह स्पष्ट मनोदर्शन किया जा सकता है कि मूल अधिकारों के अधिकथित उदारीकरण और प्रवर्तन से ऐसे कठोर अपराधियों के प्रवर्ग द्वारा अपराधों का पता लगाने में और भी कठिनाइयाँ हो सकती हैं क्तिप५ क्षेत्रों में यह महसूस किया गया है यदि हम उन्हें उनके मूल अधिकारों और मानव अधिकारों से संबंधित सुरक्षा और हितों के अधिक उपायों बनाम उनकी देहिक यातना पर विचार करें तो ऐसे अपराधी अपराधिकरण की कोई तत्व या भाव प्रकट किए बिना बेदाग निकल जाएंगे। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए न्याय की दृष्टि से एक संतुलित पहुँच आवश्यक है। इसका महत्व समाज की इस प्रत्याशा को दृष्टि में रखने पर और बढ़ जाता है कि पुलिस अपराधियों के साथ दक्षतापूर्वक और प्रभावी रीति से कार्रवाई करें।

विचारार्थ विधि

उपर्युक्त परिचर्चा को ध्यान में रखते हुए विचारार्थ निम्नलिखित विषय उद्भूत होंगे:—

1. क्या पुलिस की किसी व्यक्ति को किसी भी समय और किसी भी स्थान पर, भजिस्ट्रॉट या किसी अन्य न्यायालय से किसी आदेश या अनुज्ञा के बिना गिरफ्तार करने की अनिवार्यता व्यक्ति बनी रहनी चाहिए?

2. क्या उस संविधान व्यक्ति को जिसे पूछताछ के लिए निरुद्ध किया गया है, पूछताछ के समय उसके काउसेल की उपस्थिति के लिए जिद करने का अधिकार प्रदान करने के लिए विधि का संशोधन किया जाना चाहिए? यदि संशोधन किया जाता है तो क्या यह अपराधियों के अन्वेषण में विलंब और उनमें दृष्टक्षेप नहीं करेगा?

3. क्या विधि को यह उपबंध करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी पर पुलिस अधिकारी व्यक्ति की अभिरक्षा रखने वाले किसी लोक सेवक के लिए आज्ञापक होना चाहिए कि वह पूछताछ आरंभ करने से पूर्व उस व्यक्ति की चिकित्सीय जांच करवाएं?

22. 1972 एस सी ३१२।

23. सरविन्द्र सिंह घोरव बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (1993) क्रिमिल ला० रिपोर्ट 163 (एस सी)।

9J-M/J(D)127 M of LJ&CA—8(a)

4. क्या अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को कारित किसी क्षति या परिणामिक मृत्यु की दशा में पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विश्व उपधारणा के उपबंध के लिए भारतीय साध्य अधिनियम की धारा 114 का संशोधन किया जाना चाहिए? क्या उपधारणा खंडनीय होनी चाहिए?

5. क्या पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की यातना या मृत्यु के परिवाद की जांच करने के लिए किसी स्वतंत्र अभिकरण के लिए विधि द्वारा उपबंध किया जाना चाहिए? यदि ऐसा है तो वह अभिकरण कौन सा होना चाहिए? यदि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा यातना और अति की दशा में जांच की जाती है तो क्या यह प्रयोजन पूर्ण नहीं होगा और क्या उन्हें अपनी सचिव के दांडिक अन्वेषण विभाग या किसी पुलिस अधिकारी की सहायता अभिप्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए?

6. यदि यातना, क्षति या मृत्यु का मामला प्रथमदृश्या पाया जाता है तो क्या आगे कोई अन्वेषण किए बिना और अरचारी पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विश्व, आगे कोई अन्वेषण किए बिना और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन ऐसे अरचारी लोक सेवकों के अभियोजन के लिए सरकारों की मजुरी अभिप्राप्त किए बिना मामला रजिस्टर किया जाना चाहिए?

7. क्या किसी व्यक्ति को कारित मृत्यु या क्षति की दशा में बिना वृत्ति के आधार पर सरकार द्वारा प्रतिकर के अवाई के लिए उपबंध होना चाहिए? यदि ऐसा है तो नियत किए जाने के लिए कितनी रकम समुचित रकम होगी? क्या पूर्वोक्त अरचारी अधिकारी का विचारण करने वाले न्यायालय को शिकार व्यक्ति या शिकार व्यक्ति के आक्षितों को किसी सिविल न्यायालय के समक्ष अपकृत्य में तुकसानी अभिप्राप्त करने के उत्तरके अधिकार पर विचार किए बिना अंतिम प्रतिकर का अवाई करने की शक्ति होनी चाहिए?

8. क्या विधि में ऐसे मामले में अंतरिम राहत के लिए उपबंध होना चाहिए जहां जांच के परिणामस्वरूप अभिरक्षा में यातना, क्षति के कारण मृत्यु का प्रथमदृश्या मामला बन जाता है?

9. क्या विधि को अरचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम बसूल करने के लिए सरकार को शक्ति प्रदान करनी चाहिए?

10. क्या पूर्वोक्त उपाय पुलिस के कार्यकरण और नैतिक चरित्र पर मामलों के अन्वेषण में प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे और यह कि क्या इसका परिणाम अपराधों का अन्वेषण नहीं होगा जो लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगा इन स्थितियों से बचने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए?

पूर्वोक्त विषय ऐसे निर्धन लोगों के संरक्षण के लिए हमारी उद्दिष्टता से जत्पत्र होते हैं जो साधारणतः अभिरक्षा में यातना के अध्यवृत्ति हैं। विधि आयोग ने यह कार्य पत्र, समस्या के उन विभिन्न पक्षों को उपवर्शित करते हुए तैयार किया है जो न तो समूर्ण है और न अंतिम, अपितु वे मात्र प्रायोगिक हैं। आयोग आभारी होगा यदि न्याय शास्त्रियों, न्यायाधीशों, वकीलों, विधि अध्यापकों, और जैर सरकारी संगठनों, मानव अधिकार कार्यविदों के सुविचारित अभिमत उसे उपलब्ध हो जाते हैं क्योंकि वे विधियों में संशोधन करने के लिए सरकार को सिफारिशें करने में आयोग के लिए सहायता होंगे। इस संबंध में, विधि के संशोधन या नई विधि के अधिनियमन या किसी स्कीम की विरचना के लिए किसी भी सुझाव का, जो लोक हित को अग्रसर करेगा, स्वागत किया जाएगा।

परिशिष्ट 2

कार्यपत्र पर प्राप्त टीका दिप्पणियाँ

प्राइवेट

जैसे कि पहले कहा गया है कि विधि आयोग ने विभिन्न क्षेत्रों से राय प्राप्त करने के लिए “अभिरक्षा संबंधी अपराध” के बारे में एक कार्यपत्र प्रिवेटलिंग किया था। कार्यपत्र में विधि आयोग ने अभिरक्षा संबंधी अपराधों से संबंधित समस्याओं के विभिन्न पहलुओं के बारे में दस विवाद्यक विरचित किए थे।

आयोग ने विधि के संशोधन या नई विधि के अधिनियमन अथवा नई स्कीम विरचित करने के लिए अतिरिक्त सुझाव भी अमंत्रित किए थे।

कार्यपत्र ने शिक्षाशास्त्रियों, बावन न्यायाधीशों, छप्पन अधिकवक्तव्यों, सभी राज्यों के पुलिस महानिदेशकों/पुलिस आयुक्तों, सभी राज्यों के होम गार्ड के कमांडेंट जनरलों, औद्योगिक सुरक्षा बल के महानिदेशक, कैन्ट्रीय जांच व्यूरो के निदेशक, प्रवर्तन निदेशक, भारत-तिथ्वत सीमा पुलिस के महानिदेशक और पुलिस अनुसंधान और विकास के व्यूरो के महानिदेशक की प्राप्तियाँ के चौहत्तर पुलिस अधिकारियों और वत्तीस गृह सचिवों को भेजा गया था। इन में से दो शिक्षा शास्त्रियों, पांच न्यायाधीशों, सात अधिकवक्ताओं, बाहर पुलिस अधिकारियों और तीन राज्य सरकारों, (जिनके अन्तर्गत संघ राज्यक्षेत्र भी हैं) से उत्तर प्राप्त हुए थे।

कार्यपत्र मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और पीपुल यूनियन कार डेवोकेटिक राइटर, पीपुल्स यूनियन कार एसिडिन राइटर जैसे सैचिन्ह अभिनरणों को भी भेजा गया था, जिन्हें यह खेद की आत है कि “अभिरक्षा संबंधी अपराध” के महत्वपूर्ण विषय पर, जो मानव अधिकारों के संरक्षण से मुख्यतया संबंधित है, इन अभिनरणों से कोई उत्तर आयोग को प्राप्त नहीं हुआ।

1. गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति

विवाद्यक सं० १

क्या पुलिस को मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय से किसी अदेश या अनुज्ञा के बिना किसी भी समय पर और किसी भी स्थान पर किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की अनिवार्यता शक्ति जारी रहनी चाहिए।

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाशास्त्रियों के विचार है कि पुलिस को गिरफ्तार करने की अनिवार्यता शक्ति जारी नहीं रहनी चाहिए। उनके विचार में पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने की शक्ति के प्रयोग के विश्व समुचित जवाबदेही का तंत्रित करना होगा।

माननीय न्यायाधीशों के विचार

भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने विवाद्यक सं० १ का उत्तर संरक्षणात्मक रूप में दिया। ऐसा ही सभी चार उच्च न्यायालयोंने किया। वे विद्यानान उपबंधों को संतोषप्रद मानते हैं। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के अनुसार संविधान ने चौबीस वर्टे के भीतर निरोद्ध को न्यायिक अभिरक्षा में संरिवर्तित करने की बाध्यता अधिरोपित की है, जो पर्याप्त से भी अधिक है।

अधिकवक्ताओं के विचार

सात में से पांच ने गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति का समर्थन किया। और एक ने प्रश्न का विचलन किया। और विवाद्यक का प्रत्यक्षतः उत्तर नहीं दिया। कलान्ता वार काउंसिल ने नकारात्मक उत्तर दिया है और गिरफ्तार करने के बारे में पुलिस की शक्ति निर्विधित करने का सुझाव दिया है। वे अनुभव

करते हैं कि “संत्रेप” पद पुनः परिभाषित किया जाता चाहिए जिससे कि पुलिस समुचित मामलों में ही वारंट के बिना गिरफ्तार कर सके। विधि में गिरफ्तार करने का कारण अभिलिखित करने के लिए भी पुलिस अधिकारी को आदिष्ट होना चाहिए और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 का लोप किया जाए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह में से यारह अधिकारियों ने सुझाव दिया है कि गिरफ्तारी के बारे में विद्यमान विधि में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है और भिजोरम (इल्काल) से एक अधिकारी सहमत हो गया है और चाहता है कि विधि में संशोधन किया जाए। वे अनुभव करते हैं कि गिरफ्तार करने की अवित्तियाँ अतिवैधित नहीं हैं। एक अधिकारी कहता है कि गिरफ्तार करने की शक्ति, कठोर हृदय उत्तरादियों, आतंकवादियों, अवैध औषध बेचने वालों और तस्करों के भामलों को छोड़कर तिवैधित होनी चाहिए। अन्य कहते हैं कि गिरफ्तार करने की उनकी शक्ति के बारे में कोई शर्त नहीं लगानी चाहिए। दूसरी ओर अद्याचल प्रदेश, ईटानगर के अतिरिक्त महानिरीक्षक विधि आयोग के प्रस्ताव से सहमत है।

राज्य सरकारों के विचार

छह राज्य सरकारों, अर्थात् गोवा, परिचमी बंगाल, कर्नाटक, राजस्थान और बिहार सरकार ने गिरफ्तार करने की पुलिस शक्तियों का समर्थन किया क्योंकि विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। उनका विचार है कि यदि पुलिस अधिकारी से अपेक्षा की जाए कि वह न्यायालय से गिरफ्तार करने की अनुमति ले, तो संदिग्ध व्यक्ति दूर भाग सकता है। गोवा सरकार अनुभव करती है कि यदि पुलिस की मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है तो यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के विषद्व होगा और हत्यारा भी अपराध के स्थान से भाग जाएगा। यह विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों को हिसा में आलिप्त होने के पश्चात् भाग जाने की अनुमति देने जैसा होगा। यदि यह शक्ति छीन ली जाती है तो इसका विधि और व्यवस्था की स्थिति पर अंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। आन्ध्र प्रदेश की सरकार का विचार है कि क्योंकि धारा 220, धारा 330, धारा 331 के अधीन भारतीय दंड संहिता में अन्तविष्ट दंडात्मक उपबंध अपर्याप्त है। और तकरीबन प्रभावहीन हैं इसलिए ऐसी शक्तियों के दुरुपयोग की हर प्रकार से संभावना है। उन्होंने सुझाव दिया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन गिरफ्तार करने की शक्ति में कमी की जाए और यह आतंकवादियों, कठोर हृदय अपराधियों तक सीमित होनी चाहिए किन्तु अन्य के लिए नहीं होनी चाहिए। राज्य सरकारों/पांडिचेरी, मिजोरम, के संघ राज्य क्षेत्रों ने भी इस विचार का समर्थन किया है।

2. पछताछ के समय घर कांउसेल की उपस्थिति

विवाद्यक सं० २

क्या उस सदिग्द व्यक्ति को, जिसे पूछताछ के लिए निरुद्ध किया जाता है, पूछताछ के समय अपने काउंसल की उपस्थिति के लिए जोर देने के बारे में अधिकार प्रदान करने के लिए विधि का संशोधन करता चाहिए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाज्ञासिद्धयों ने विधि आयोग द्वारा उठाए गए विवाद्यक का समर्थन किया है और विद्यमान विधि में संशोधन का सुझाव दिया है। उनमें से एक ने इसकी सफलता पर आशंका व्यक्त की, क्योंकि वह अनुभव करता है कि यह साध्य नहीं है। वह प्रश्न करता है कि निर्धन व्यक्ति का काउंसेल कौन है। दूसरे ने पारिवारिक मित्रों या विधिक काउंसिल जैसे तीसरे पक्षकार की उपस्थिति का सुझाव दिया है, जो पुलिस की शक्तियों की जबाबदेही के लिए सहायक होगा। उसने आगे सुझाव दिया है कि ज्येष्ठ पुलिस अधिकारी चयनित किए जाने चाहिए जो पुलिस थाना में एकाएक थेंट करें, यह सुनिश्चित करें कि अवैध गिरफ्तारियां न की जाएं और यातना पद्धति का उपयोग न किया करें। दोनों सहमत थे कि यदि कोई व्यक्ति किसी ग्राम में गिरफ्तार किया जाता है तो ग्राम के “ग्राम प्रधान” या “सरपंच” को भी सूचिच किया जाए और गिरफ्तार व्यक्ति का पता ठिकाना भी गिरफ्तार व्यक्ति के कुटुम्ब और मित्रों को दिया जाना चाहिए। इन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि कोई ऐसा “अभिरक्षा ज्ञापन” विहित किया जाना चाहिए जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति और पुलिस द्वारा ली गई संपत्ति के बारे में जानकारी प्रविष्ट की जानी चाहिए और गिरफ्तार करने

वाले पुलिस अधिकारियों का विवरण भी उसर्वे भरा जाना चाहिए इस विचार का जोगिन्द्र सिंह बताएँ म स्टैट आफ उत्तर प्रदेश, (1994)³ जे टो (एस सो) 423 के नामत्रों में उच्चाधिकारी नाला के हाल ही के निर्णय द्वारा अब समर्थन किया गया है।

सामनीय न्यायाधीशों के विचार

दो उच्च न्यायालयों ने, अर्थात् जम्ख-नमीर और गंगतोड़, नकारात्मक उत्तर दिया है। उनके अनुसार प्रस्तावित संशोधन से कुछ नहीं होगा और पूछताछ में विवर्म्ब होगा उन्होंने सुनाय दिया है कि पूछताछ इन्हें द्वारानिक और भानोवैज्ञानिक पैटर्न का प्रयोग परके वैज्ञानिक आधार पर की जानी चाहिए उनके अनुसार भिन्न और संबंधी को उपस्थिति पर्याप्त होगी और काउंसेल को उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। अनन्ध प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी इस विवादिक का नकारात्मक उत्तर दिया है। उसका विचार है कि विद्यमान प्रक्रिया में किसी परिवर्तन को आवश्यकता नहीं है। उसके अनुसार काउंसेल को उपस्थिति पूछताछ में विवर्म्ब करेगा। दूसरी ओर भारत के मूत्ररूप मुठान-नाम्पुर्ति ने कहा है कि अधिवक्ता की उपस्थिति समुचित होगी—आपवादिक भासलों में ही एकान्तता में पूछताछ के लिए न्यायालय से अनुमति को जानी चाहिए। इस प्रकार चार न्यायिक रायों में से तीन निरपेक्ष विकिंग को पूछताछ के दौरान काउंसेल को उपस्थिति को अनुमति देने के लिए विद्यमान विधि के संशोधन के प्रस्ताव के विरुद्ध हैं और न्यायमूलि आरोपित आपवादिक भासलों में पूछताछ के दौरान अधिवक्ता की सहायता का उपबंध करने के लिए संशोधन के पक्ष में हैं।

अधिवक्ताओं के विचार

सात में से चार ने पूछाया कि दौरान काउंसेल की उपस्थिति द्वारा विधिक सहायता वा उपबंध करने के विधि आयोग के प्रश्नाव का स्पष्ट रूप में सर्वथा किया। वे महसूस करते हैं कि काउंसेल की उपस्थिति बांछोग्र है और अपराध को पूछताछ में विद्यमान लोगों करेगी और न हो उसमें जिसी भी रीति में हस्तक्षेप करेगो। उन्होंने अनुसार यह अनुच्छेद 22(1) के अनुरूप ही है और इसला नविनी सत्यालय के विभिन्न द्वारा सर्वथा किया गया है।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह में से मणिपुर, इम्फाल से केवल एक अधिकारी ने पूछताछ के दौरान एक काउंसेल का उपबंध करने के लिए संशोधन का सुझाव दे कर प्रस्ताव का समर्थन किया है। ईटानगर से दूसरे ने सुझाव दिया विकास को वकील को सहायता का उपबंध पूछताछ के बाद के प्रक्रम पर किया जा सकता है। दिल्ली, बम्बई और उत्तर प्रदेश से गोष ज्येष्ठ पुलिस अधिकारी पूछताछ के समय काउंसेल को उपस्थिति के लिए विधि का संशोधन करना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि पूछताछ के समय काउंसेल की उपस्थिति कार्यवाही का प्रतिकूलतः प्रभावित करेगी और उससे बिलब्य होगा तथा अपराध के अन्वेषण में भी दृस्तावेष होगा सिक्किम से एक ज्येष्ठ आईपी एस अधिकारी अनुभव करता है कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है तो अन्वेषण अतंभव हो जाएगा। इससे भामलों के अन्वेषण में ह्रस्वत्रैप होगा और निरहु व्यक्ति पर भ्रान्तव वित्तीय बोझ पड़ेगा। एक अन्य ज्येष्ठ अधिकारी (दिल्ली पुलिस का भूतपूर्व आयुक्त) का विचार है कि काउंसेल, बलात्संग, डकौती, लट, आदि के मामलों को छोड़कर अन्तर्गत नहीं किया जाना चाहिए।

राज्य सरकारों के विचार

भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों के नौ उत्तरों में से गोवा, आंध्र प्रदेश, मिजोरम, और पांडिचेरी की सरकारें ने पूछतात के समय अधियुक्त के काउंसेल की उपस्थिति के लिए उसे हकदार बनाने के लिए दंड प्रक्रिया संहित की धारा 41, 50 और 51 का संशोधन करने की दृष्टि से प्रभत्ताव का समर्थन किया है। गोवा की सरकार ने भी नंदिनी सत्यार्थी बनाम पी० एल० द/नी 1978 क्रिमीनल एल जे 968 के निर्णय का उल्लेख किया है आनंद्र प्रदेश की सरकार कहती है कि अधिकार देशों में पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को तत्काल अपने अट्टनी से संरक्ष करने की अनुमति दी जाती है। संविधान का अनुच्छेद 22 भी विलिंदिष्टः अधिकारियों करता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी पसंद के विधिक बाउसेल की सलाह लेने और उसके द्वारा अपनी प्रतिरक्षा करने के अधिकार से इन्कार नहीं किया जाना चाहिए। आंध्र प्रदेश की सरकार का विचा

है कि इस प्रश्न पर विधि में विनिर्दिष्ट यह उपबंध करके विस्तार करना चाहिए कि पुलिस द्वारा पूछताल आरंभ करने के पूर्व गिरफ्तार व्यक्ति को अपने विधिक काउंसेल की सलाह लेने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए। उसने यह भी दलील दी है कि जहां गिरफ्तार व्यक्ति विधिक काउंसेल के लिए असमर्थ है वहां राज्य को स्वयं मानव अधिकार आयोग या जिला विधिक सहायता समिति द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं के पैनल में से उसकी पर्सन के किसी विधिक काउंसेल की सहायता उसको दी जानी चाहिए।

शेष राज्य सरकारों ने ऐसे प्रस्ताव को साथ असहमति व्यक्त की है और उन्होंने कोई ऐसा अधिकार न देने का सुझाव दिया है क्योंकि इससे अपराध के अन्वेषण में विलम्ब होगा।

३. वीडियो/संविद्य स्विकृतयों की चिकित्सीय जांच

विवादाक सं० ३

क्या विधि को यह उपबंध करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी पर उस व्यक्ति की अभिरक्षा की धारण करने वाले पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के लिए बाध्यकर होना चाहिए कि अन्वेषण आरंभ करने के पूर्व उसकी चिकित्सीय जांच कराए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

शिक्षाशास्त्रियों ने विधि आयोग के इस प्रस्ताव का समर्थन किया और सकारात्मक उत्तर दिया किन्तु उन्होंने शंका व्यक्त की कि क्या ऐसा चिकित्सा अधिकारी दुरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों या आविवासी क्षेत्रों में गिरफ्तार व्यक्तियों को उपबंध होगा। इस तथ्य के होते हुए भी, उन्होंने दंड प्रक्रिया सहित के उपबन्धों के संशोधन पर जोर किया और किसी व्यक्ति की अभिरक्षा में लेने के पूर्व उसकी चिकित्सीय जांच करना पुलिस के लिए बाध्यकारी बताया।

स्थायाधीशों के विचार

छह अधिवक्ताओं में से दो ने प्रस्ताव का समर्थन किया है और गिरफ्तार व्यक्ति की चिकित्सीय जांच का उपबंध करने के लिए सिफारिश की है, उनमें से एक ने सीधा उत्तर देने से विचलन किया और तीन ने प्रस्ताव का विरोध किया क्योंकि वे इसे आवश्यक नहीं समझते हैं, एक अधिवक्ता ने सलाह दी है कि चिकित्सीय जांच के अतिरिक्त, जो आवश्यक है, जब भी किसी गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना समाधान करना चाहिए कि गिरफ्तारी पुलिस द्वारा अभिवक्ति लारी और समय पर हुई थी त कि उस के पहले और गिरफ्तार व्यक्ति को उसे न्यायालय में पेश करने के पूर्व कोई यातना नहीं दी गई। उच्चतम न्यायालय के एक ज्येष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि अभिरक्षाधीन व्यक्ति को दंड प्रक्रिया की धारा ५ के अधीन चिकित्सीय जांच का अधिकार प्राप्त है, किन्तु पुलिस अधिकारी को भी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तार करते समय सूचित करना चाहिए कि उसे चिकित्सा अधिकारी द्वारा जांच किए जाने का अधिकार प्राप्त है।

पुलिस अधिकारियों के विचार

तीन में से, एक अनुभव करता है कि ऐसा कोई उपबंध करने की आवश्यकता नहीं है, एक अन्य कहता है कि विधि का संशोधन न किया जाए किन्तु प्रशासनिक अनुदेश दिए जाएं कि यदि गिरफ्तारी के समय कोई व्यक्ति दुर्बल, क्षतिग्रस्त आदि पाया जाता है तो उसकी चिकित्सीय जांच की जानी चाहिए। तीसरा विधि आयोग के प्रस्ताव के पक्ष में हैं परन्तु तब जब चिकित्सा अधिकारी पुलिस याने के निकट उपलब्ध हो।

राज्य सरकारों के विचार

नी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों से प्राप्त सभी उत्तर प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं। आन्ध्र प्रदेश सरकार कहती है कि इसका सभी मामलों में अनुसरण करना सम्भव नहीं है। इसका उन्हीं मामलों में अनुसरण किया जा सकता है जहां गिरफ्तार व्यक्ति या उसका काउंसेल अथवा उसके नातेदार चिकित्सीय जांच के लिए अनुरोध करते हैं। ऐसा होने पर पुलिस ऐसा अनुज्ञात करने के लिए आवश्यक होगी।

४. पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विशेष उपधारणा :

विवादाक सं० ४

क्या अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को कारित किसी क्षति या मृत्यु होने की दशा में पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विशेष उपधारणा करने के लिए उपबंध हेतु भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ का संशोधन करना चाहिए ? क्या यह उपधारणा खंडन करने योग्य होनी चाहिए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

‘दो शिक्षाशास्त्रियों में से एक ने सकारात्मक उत्तर दिया है। दूसरे ने इस विवादाक छुआ ही नहीं।

स्थायाधीशों के विचार

पांच स्थायाधीशों में से, उनमें से लगभग सभी अभिरक्षा में मृत्यु के मामले में उपधारणा के पक्ष में हैं और इसका सकारात्मक उत्तर दिया है। उनमें से एक जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय से न्यायाधीश रिजिस्ट्री कहते हैं कि उपधारणा खंडन योग्य होनी चाहिए। न्यायाधीशों में से एक ने साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ के संशोधन का सुझाव दिया है और साक्ष्य अधिनियम की धारा ५ के अधीन उपधारणा खंडन योग्य होनी चाहिए। श्री न्यायाधीश रिजिस्ट्री रिकार्ड का विचार है कि लोक भावना उपधारणा करने के पक्ष में प्रतीत होती है। किन्तु गंभीर क्षति और मृत्यु के मामलों में अपवाद किया जा सकता है और ऐसे मामलों में खंडन योग्य उपधारणा सावित की जा सकती है।

अधिवक्ताओं के विचार

सात उत्तरों में से पांच खंडन योग्य उपधारणा के पक्ष में हैं। वे अनुभव करते हैं कि एक बार साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ के अधीन उपधारणा समिलित हो जाती है तो इसका निश्चित रूप से गिरफ्तार व्यक्ति पर वर्तमान अभिरक्षा संबंधी कूरता या यातना में लोक सेवक या पुलिस अधिकारी की समृद्धि को निर्वहित और नियमित करने में दूरगमी प्रभाव होगा।

पुलिस अधिकारियों के विचार

विधि आयोग द्वारा प्राप्त वार्षिक विचारों में से तीन ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों ने उपधारणा के प्रस्ताव का समर्थन किया है और शेष ने उसका विरोध किया है। जो विशेष हैं उन्होंने कहा है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ का संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। उच्चतर रैक के पुलिस अधिकारियों को यातना पद्धति पर कोई आपेक्षा नहीं है।

राज्य सरकारों के विचार

नी राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों में से चार उपधारणा के विचार के विरुद्ध हैं और पांच का यह उपधारणा करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ का संशोधन करने के बारे में कोई आक्षेप प्रतीत नहीं होता, कि अभिरक्षा के दौरान कारित क्षति उस अधिकारी ने कारित की है, जिसकी अभिरक्षा में विनिर्दिष्ट समय पर वह व्यक्ति था। आन्ध्र प्रदेश की सरकार अनुभव करती है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा ११४ (क) और ११४ (ख) में अंतर्विष्ट उपबंध यदि अभिरक्षा संबंधी अपराधों को विस्तारित कि जाते हैं तो संबंधित पुलिस अधिकारी जबाबदेह बनाया और अभिरक्षा संबंधी अपराधों पर नियन्त्रण लग सकता है। मिजारम और पांडिचेरी की सरकारें इस विचार का अनुसरण करती हैं। गोवा और मेघालय की सरकारें भी इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं। गोवा की सरकार यह भी कहती है कि यह विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए कि व्यक्ति उपधारणा का फायदा और उपहति के भागलों में ही लागू होता है या साधारण क्षति के भागलों में भी लागू होता है।

५. जांच करने के स्वतंत्र अभिकरण :

विवादाक सं० ५

विधि आयोग द्वारा उठाया गया पांचवा विवादाक यह था कि क्या विधि में पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की यातना या मृत्यु की शिकायत की जांच करने के लिए स्वतंत्र अभिकरण का उपबंध होना

चाहिए। वह अभिकरण क्या होता चाहिए? विधि आयोग ने एक और भी प्रश्न उठाया कि क्या इससे प्रयोजन सिद्ध हो जाएगा यदि यातना और क्षति के मामले में जांच न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर भैंस्ट्रेट द्वारा और मृत्यु के मामले में जिले के सेशन न्यायाधीश द्वारा की जाती है? क्या उन्हें सी आई डी या अपनी पंसद के किसी पुलिस अधिकारी की सहायता प्राप्त हो जाएगी?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

शिक्षाशास्त्रियों ने अभिरक्षा संबंधी अपराधों में जांच करने के लिए स्वतंत्र अभिकरण के पक्ष में विचार व्यक्त किया। उनमें से एक आगे कहता है कि महिला आयोग अधिनियम स्वतंत्र अभिकरण के लिए उपबंध करता है।

न्यायाधीशों के विचार

सभी पांचों न्यायाधीश विधि में अन्वेषण के मामलों के लिए स्वतंत्र अभिकरण का उपबंध करने के पक्ष में हैं। एक उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने सुझाव दिया है कि क्रमशः अभिरक्षा संबंधी हिंसा और अभिरक्षा संबंधी मृत्यु की रिपोर्टों का संज्ञान करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश को सशक्त करनावस्तुतः उचित होगा। ऐसा बारके पुलिस अधिकारियों का पर्यवेक्षण न्यायिक अधिकारियों द्वारा किया जाएगा। अन्य न्यायाधीश ने सकेत दिया कि नया गठित किया गया मानवाधिकार आयोग उचित अधिकरण होगा।

अधिवक्ताओं के विचार

एक अधिवक्ता को छाइकर, जिसने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया है, उनमें से शेष विधि आयोग के इस सुझाव से सहमत हैं कि अभिरक्षा संबंधी मृत्यु या अभिरक्षा के दौरान यातना के अन्वेषण के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण आवश्यक है। वे अनुभव करते हैं कि यदि जांच, व्यास्थिति, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट या ज्येष्ठ न्यायाधीश द्वारा की जाती है तो दंड प्रक्रिया संहिता को अपराध का विचारण करने के प्रयोजन के लिए पर्याप्त सारांश रूप में परिवर्तित करना होगा। उन्होंने कहा कि पुलिस प्रशासन को ऐसी जांच में भाग लेने के लिए अनुमति नहीं किया जाना चाहिए। वे अनुभव करते हैं कि केन्द्रीय अन्वेषण बूरो पुलिस प्रशासन का भाग होने के कारण, जनता के विश्वास के लिए बहुतर स्थिति में नहीं है।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बाहर में से केवल तीन स्वतंत्र अभिकरण के पक्ष में हैं। दिल्ली के एक भूतपूर्व पुलिस आयुक्त यातना या अभिरक्षा संबंधी मृत्यु की जांच पड़तालं करने के लिए प्रत्येक राज्य में कार्यरत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में सरकार के अधीन एक पृथक् संगठन की स्थापना को अधिगमन देते हैं। पुलिस अधिकारियों की वह संख्या ऐसे किसी अभिकरण के पक्ष में नहीं है। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र में अभिरक्षा-संबंधी मृत्यु या अभिरक्षा संबंधी हिंसा अथवा बलात्संग के मामलों का राज्य सी आई डी द्वारा अन्वेषण करने के लिए राज्य सरकार का आवेदन है और अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार की रीत का अनुसरण किया जाता है। तमिलनाडु में पुलिस यातना अभिरक्षा में मृत्यु, बलात्संग, आदि के मामलों में पी०एस०ओ० ४४५ वाल्यूम० प्रक्रिया के बारे में रखा गया है और अन्य लोक सेवकों के लिए अन्वेषण पुलिस द्वारा किया जाता है तथा विधि के अनुसार कार्रवाई की जाती है। बास्तविक अनुभव के अनुसार कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा अन्वेषण पर्याप्त है। उनके अनुसार विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझाव उपयोगी नहीं होंगे क्योंकि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायाधीशों के पास पहले से ही अधिक काम है और जांच में अधिक समय लगेगा और किर भासला रजिस्टर किया जाएगा। ऐसे मामलों का अन्वेषण राज्य सी आई डी या किसी केन्द्रीय स्वतंत्र पुलिस अभिकरण द्वारा आज्ञापक करना और ऐसे किसी मामले में, जहां ऐसे किसी अभिकरण द्वारा अन्वेषण संतोषप्रद नहीं है, मानवाधिकार द्वारा अन्वेषण करने के लिए उपबंध करना उपयोगी होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

अधिकारी राज्यों सरकारों/संघ राज्यक्षेत्र स्वतंत्र अभिकरण के सुझाव के विरुद्ध हैं। इनमें से एक ने सुझाव दिया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १७६ के अधीन किसी मजिस्ट्रेट द्वारा जांच उपयोगी

होगी। अंध्र प्रदेश की सरकार अनुभव करती है कि अध्यादेश द्वारा सूचित दोनों केन्द्रीय और राज्य स्तर पर, मानवाधिकार आयोग के पास पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की मृत्यु या यातना की शिकायतों की अन्वेषण के लिए अपना तंत्र है। किसी अन्य अभिकरण की आवश्यकता नहीं है। भिजोरम और पांडिचेरी सरकारें इस वृष्टिकोण का अनुसरण करती हैं।

कर्नाटक सरकार का विचार है कि यातना या पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु के मामलों को पूर्ण अन्वेषण के लिए किसी स्वतंत्र अभिकरण को सुपुर्दगी के बारे में दो राय नहीं हैं। यह आगे कहती है कि ऐसे सभी मामलों की जांच न्यायिक प्राधिकारियों को सुपुर्द करना उपयुक्त नहीं होगा। कर्नाटक में अभिरक्षा संबंधी मृत्यु के मामलों को सी आई डी को निविष्ट किया जाता है। अभिरक्षा यातना के मामलों में भी विभागीय तौर पर कार्रवाई की जाती है।

मेघालय सरकार का विचार है कि ऐसी आज्ञापक जांच कार्यदाही मजिस्ट्रेट द्वारा की जा सकती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १७६ में संशोधन की आवश्यकता है। मजिस्ट्रेट सी आई डी या अपनी पंसद के किसी पुलिस अधिकारी की सहायता ले सकता है।

पश्चिमी बंगाल की सरकार का विचार है कि यातना या अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में यह पर्याप्त होगा यदि अधिकारिता रखने वाला कोई न्यायिक मजिस्ट्रेट जांच करता है। उसे दांडिक जांच विभाग या अधिकारिता के भीतर किसी पुलिस अधिकारी की सहायता प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता होगी। विहार और गोवा की सरकारें प्रस्ताव के विरुद्ध हैं।

अभियोजन के लिए बंजूरी :

विवादाक सं० ६

क्या कोई दांडिक मामला “अपचारी पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध बिना किसी अतिरिक्त अन्वेषण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ के अधीन ऐसे अपचारी लोक सेवक के अभियोजन के लिए सरकार की मंजूरी प्राप्त किए बिना रजिस्टर किया जाना चाहिए यदि यातना, क्षति या मृत्यु का प्रथम दृष्ट्या मामला पाया जाता है?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ का संशोधन किया जाना चाहिए?

न्यायाधीशों के विचार

उन सभी न्यायाधीशों ने, जिन्होंने अपने विचार भेजे हैं, विवादक का सकारात्मक उत्तर दिया है। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के अनुसार न्यायिक राय स्पष्ट है और अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

अधिवक्ताओं के विचार

छह अधिवक्ता में से पांच अधिवक्ता विधि आयोग के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ के संशोधन के प्रस्ताव से सहमत हो गए हैं, एक ने सुझाव दिया है कि अपचारी अधिकारी को तत्काल निलम्बन-बीन कर देना चाहिए। उच्चतम न्यायालय का एक ज्येष्ठ अधिवक्ता दांडिक मामले के रजिस्ट्रीकरण के विरुद्ध है। वह महसूस करता है कि न्यायालय को मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के आधार पर मामले का संज्ञान करना चाहिए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बाहर से दस ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों का विचार है अपचारी अधिकारी के विरुद्ध दांडिक मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना चाहिए और सरकार की किसी मंजूरी की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ के अधीन आवश्यकता नहीं है। किन्तु पुलिस की अभिरक्षा से भागने और एक पुलिस से दूसरी की अन्तरण के समय रेल गाड़ी से कूद जाने जैसी परिस्थितियों में मंजूरी के बिना अभियोजन अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों का उत्तर

नौ में से पांच के विचार अंतरिम प्रतिकर के पक्ष में हैं और चार ऐसे प्रस्ताव के विश्वास हैं। आन्ध्र प्रदेश सरकार का विचार है कि अंतरिम प्रतिकर के संदर्भ के लिए उपर्युक्त उस समय अत्यावश्यक है जब प्रथमदृष्ट्या मामला बन जाता है। पांडिचेरी और मिजोरम सरकारें भी इस विचार का समर्थन करती हैं। बिहार और गोवा सरकारें भी इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं।

अधिकारियों से वसूली

विचारक सं० १

वया विधि द्वारा सरकार को अपचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम वसूल करने के लिए शक्ति प्रदत्त की जानी चाहिए?

शिक्षास्थितियों के विचार

दोनों का विचार है कि अपचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम पूर्णतः या भागतः वसूल की जानी चाहिए किन्तु एक ने शंका व्यक्त की है कि व्यष्टि पुलिसजन से धन कैसे संग्रहीत किया जाएगा।

न्यायाधीशों के विचार

पांच न्यायाधीशों में से चार सरकार की बजाय व्यष्टि से रकम वसूलने के पक्ष में हैं। एक ने मुद्दे का प्रत्यक्षतः उत्तर नहीं दिया है। उनमें से सभी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है कि वसूली अपचारी अधिकारी से की जानी चाहिए। एक ने सुझाव दिया है कि वसूली उस सीमा तक की जानी चाहिए। जिस तक यह साध्य है अन्य अधिकारी का विचार है कि वसूली उपहति, यातना या क्षति अथवा मूल्य कारित करने वाली विधि का बोर उपेक्षा के मामलों में ही अधिरोपित की जानी चाहिए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह पुलिस अधिकारियों में से केवल तीन इस पक्ष में हैं जब कि शेष आठ प्रतिकर की वसूली से असहमत हैं तथा एक का विचार है कि यह सरकार के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

नौ में से तीन अपचारी अधिकारी से रकम की वसूली करने के पक्ष में हैं तथा दो राज्य सरकारें ५० प्रतिशत की सीमा तक अपचारी अधिकारी से वसूली के पक्ष में हैं। पांडिचेरी की सरकार का विचार है कि कम से कम प्रतिकर की योड़ी प्रतिशतता तो अपचारी अधिकारी से वसूलीय होनी चाहिए। गोवा सरकार इस प्रस्ताव से असहमत है। आन्ध्र प्रदेश सरकार इस मुद्दे पर सावधानी पूर्वक विचार करने का सुझाव देती है कि क्योंकि यह सोचनीय मुद्दा है। मिजोरम सरकार भी इस विचार का समर्थन करती है। कर्नाटक सरकार का विचार है कि प्रतिकर की मात्रा विचारण न्यायालय अवधारित करेगा इसलिए किसी अन्य उपर्युक्त की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्तावित संशोधनों का पुलिस कृत्यकारियों पर प्रभाव :

विचारक सं० १०

वया उपरोक्त कदम पुलिस के कार्य करने और उसके मनोबल को अन्वेषण के मामलों में प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं करेंगे, और इसके अतिरिक्त क्या इसका परिणाम अपराधों का अन्वेषण न करना नहीं होगा, जो लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगा। इन परिस्थितियों से बचने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए?

शिक्षास्थितियों के विचार

इस मुद्दे का किसी भी शिक्षास्थिति ने प्रत्यक्ष रूप से उत्तर नहीं दिया है।

न्यायाधीशों के विचार

पांच न्यायाधीशों में से दो का विचार है कि इसका प्रतिकूल प्रभाव होगा और दो का विचार है कि इसका पुलिस के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। एक ने इस मुद्दे का उत्तर नहीं दिया।

अधिकारियों के विचार

उन सभी छह अधिकारियों ने, जिन्होंने उत्तर दिए हैं, कहा है कि इससे पुलिस का मनोबल प्रभावित नहीं होगा और अन्वेषण भी प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं होगा।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह पुलिस अधिकारियों में से छह कहते हैं कि इससे मनोबल प्रभावित नहीं होगा। पांच का विचार है कि इसका कोई प्रभाव नहीं होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

नो प्राप्त उत्तरों में से पांच राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्र इस विचार से सहमत नहीं हैं। पश्चिमी बंगाल सरकार ने सुझाव दिया है कि एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। राजस्थान सरकार इस बात पर जोर देती है कि सिफारिश किए गए अत्यकालिक कदमों से पुलिस के कृत्य करने में कुछ अव्यवस्था आएगी और पुलिस मनोबल में भी कमी आएगी किन्तु अंततः उनसे पुलिस ज्यादतियों को कम करने में सहायता मिलेगी। एक बार इन कदमों का कार्यान्वयन हीने से पुलिस को काफी दबावों के अधीन कृत्य करना पड़ेगा और न्यायालयों को इसका संज्ञान करना चाहिए। न्यायालयों को अपराध में फ़ताने वाली सामग्री की वसूली के लगभग अभाव को ध्यान में रखना होगा और दौखिक साक्ष्य पर विश्वास करना पड़ेगा। इस प्रकार साक्ष्य विधि का नवा निर्वचन सामने आएगा और पुलिस अन्वेषण में न्यायालयों के विश्वास के अधाव में अन्तोगत्वा। लोक व्यवस्था प्रतिकूलतः प्रभावित होगी।

आन्ध्र प्रदेश सरकार का विचार है कि कार्यपद में प्रकल्पित कदम पुलिस के कृत्य करने और मनोबल को प्रभावित नहीं करेंगे। दूसरी ओर पुलिस की ज्यादती की न्यूनतम तक कम किया जा सकता है। अतः पुलिस सुधारों की अन्यत आवश्यकता है और इनका आगे स्थगन करना असहनीय है। मिजोरम और पांडिचेरी की सरकारें इस विचार का समर्थन करती हैं। कर्नाटक सरकार का कहना है कि इससे पुलिस के कार्य करने और मनोबल पर आवश्यक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे मामलों का अन्वेषण कर रहे हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अपराधों का अन्वेषण करने के दौरान उत्पीड़न की पद्धतियों का प्रयोग न किया जाए, यह आत्यन्तिक रूप से आवश्यक है कि अभियुक्त व्यक्तियों की भूत्यु को रोकने के लिए कुछ रक्षोपाय किए जाएं। किन्तु दोषी पुलिस अधिकारियों को दृढ़ देने से किसी भी रूप में यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अन्वेषण अधिकारी का मनोबल कम किया जा रहा है। अन्वेषण अधिकारी को अपनी सीमाएं मालूम होनी चाहिए और उसे ऐसी अनियंत्रित शक्ति नहीं होनी चाहिए, जो नागरिकों के हितों के लिए अहितकर हो सकती है।

मूल्य : देश में—रुपये 1145.50 पैसे; विदेश में—पौंड 44-10 शिलिंग 7 पैस अथवा
डॉलर 68-73 सैन्ट्स

1997

प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय शिमला द्वारा मुद्रित तथा
प्रकाशन नियन्त्रक सिविल लाइन्स दिल्ली द्वारा प्रकाशित